

6

महात्मा जरथुशत्र

‘जरथुशत्र’ प्राक् इतिहासकाल में एक उच्च कोटि के महात्मा हो गये हैं जिससे प्राचीनतम पारसी-मत उजागर हुआ। विश्व के लिए उस महान पुरुष की अद्भुत देन है।

1. जन्म और जीवन

आज से कई हजार वर्ष पूर्व ‘ईरान’ देश अनेक दुराचारों के अन्धकार से ढका था। इसी देश में राजघराने से सम्बद्ध एक मां से ‘स्पितमा’ (Spitama) नाम का बच्चा पैदा हुआ।

वे बचपन से ही इतने मेधासम्पन्न और तीव्रबुद्धि थे कि उनके प्रश्नों के सामने उनके पिता भी नतमस्तक हो जाते थे।

उनका पन्द्रह वर्ष की आयु में विवाह कर दिया गया; परन्तु कुछ ही दिनों के बाद उन्हें ऐश्वर्य भरे गृहस्थी से वैराग्य हो गया और वे अपनी नवयुवती पत्नी तथा ऐश्वर्य छोड़कर विरक्त हो गये।

‘स्पितमा’ पन्द्रह वर्षों तक साधना में लगे रहे, और तब उन्हें ज्ञान एवं शांति की प्राप्ति हुई। इस प्रकार जब उनको तीस वर्ष की उम्र में सिद्धावस्था प्राप्त हुई, तब उनका नाम ‘स्पितमा’ से ‘जरथुशत्र’ पड़ा। ‘जरथुशत्र’ का अर्थ होता है चमकनेवाला।

2. प्रचार कार्य

जरथुशत्र पुनः घर पर लौट आये और अपने विचारों के प्रचार करने का प्रयत्न करने लगे; परन्तु उन्हें तत्काल सफलता नहीं मिली। बहुत समय तक अनुयायी के रूप में उनके एक भतीजे को छोड़कर कोई न था। इसके अतिरिक्त ईरान के बाहर कौन कहे ईरान में ही उनके विचारों को कोई मानने वाला न था। शासक और पुरोहित वर्ग उनसे नाराज था। परन्तु जरथुशत्र हताश नहीं हुए।

कुछ समय के बाद पड़ोसी बेक्ट्रिया राज्य के शासक ‘विष्टास्प’ ने जरथुशत्र के सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया। फिर उस शासक के दो मन्त्री ‘जामास्प’

और 'फ्रशाओष्ट' भी जरथुश्त्र के अनुयायी बन गये। इस प्रकार जरथुश्त्र का सिद्धान्त पूर्वी ईरान का राजधर्म बन गया।

फिर पीछे तो उनके विचारों का बड़े जोर-शोर से प्रचार हुआ। इस प्रचार से कुछ निरंकुश शासक बौखलाये; परन्तु कुछ कर न सके, और जरथुश्त्र के जीवनकाल में ही उनका मत ईरान में सर्वव्याप्त हो गया।

3. जरथुश्त्र का समय

पश्चिमी विद्वानों के विचारों से जरथुश्त्र का समय ईसा से एक हजार वर्ष पूर्व है। परन्तु अनेक प्राचीन ग्रीक लेखकों ने जरथुश्त्र को ईसा से कई हजार (करीब छः हजार) वर्ष पूर्व माना है। यह निश्चित है कि संसार में जरथुश्त्र और उनके धर्मग्रंथों के नाम बहुत प्राचीन हैं। यह कहा जा सकता है कि जरथुश्त्र उतने ही प्राचीन हैं जितना कि ऋग्वेद के ऋषिगण। कहा जाता है जरथुश्त्र और वेदव्यास से शास्त्रार्थ हुआ था। वेदव्यास स्वयं ईरान गये थे।

दुख के साथ कहना पड़ता है कि जैसे बुद्ध मत भारत की धरती पर जन्म कर और फल-फूल कर अपनी जन्मभूमि से निर्वासित हो गया, उसी प्रकार महात्मा जरथुश्त्र का मत आज से एक हजार वर्ष के पूर्व इस्लाम की क्रूरता के कारण अपने देश से निर्वासित हो गया। जरथुश्त्र के ईरानी अनुयायी इस्लाम के सामने घुटने टेक दिये और कुछ अपनी जान बचाकर भारत भाग आये। इन्हीं का नाम 'पारसी' है। पश्चिमी भारत के 'उदवाड़ा' नामक स्थान में इनका प्रधान मन्दिर है, जहां इनके द्वारा पूजी जाने वाली पवित्र अग्नि स्थापित है। ये अग्नि की पूजा करते हैं।

4. ईरानी और भारतीय संस्कृतियों की समानता

प्राचीन ईरान और भारत की संस्कृतियों में काफी समानता है। यह उनके ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है। कहते हैं हमारे पितामह आर्य लोग अपने उद्गम स्थल से जब चल पड़े तब उनकी दो धाराएं हो गयीं, एक ईरान में चली गयी दूसरी भारत में। देश-काल के भेद से ईरानी और भारतीय संस्कृतियों में अन्तर आ गया, परन्तु यथार्थतः दोनों सभ्यताओं का स्रोत एक है। जैसे प्राचीन भारतीय आर्य लोगों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चतुर्वर्ण की व्यवस्था की थी, वैसी मिलती-जुलती व्यवस्था ईरानियों में पायी गयी है। उनके चारों वर्णों के नाम क्रमशः 'आश्रवण', 'रेथेष्टार', 'वास्ट्रयोश' तथा 'हुतोक्ष' है। वे भी आर्यों के समान अग्नि, जल, वायु, इन्द्र आदि को देवता मानकर पूजते थे।

उनकी भाषा वैदिक संस्कृत से मिलती-जुलती है।

प्राचीन ईरान के धर्मग्रन्थ का नाम 'यस्न' है। इसमें 72 'हास' यानी भाग हैं। इनमें जरथुशत्र की गाथा पांच भागों में है। उन पांचों के नाम इस प्रकार हैं—अहुनवैती, उष्तवैती, स्पेन्तामैन्यु, योहू-क्षत्र तथा वहिश्तोइशती। इन्हीं पांचों भागों में जरथुशत्र की सारी शिक्षाएं भरी पड़ी हैं।

ईरानियों के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'अवेस्ता' में कहीं-कहीं उसी प्रकार उद्गार हैं जैसे ऋग्वेद की ऋचाओं में। इनके ईश्वर का नाम 'अहुरमजदा' है।

5. सिद्धान्त

जरथुशत्र ने कुछ निर्गुण की-सी भी कल्पना की है और इसके विपरीत उन्होंने 'अहुरमजदा' को छह अन्य रूपों से युक्त माना है।

इन्हीं सबसे उन्होंने संसार की उत्पत्ति की कल्पना की है। ईरानी एवं पारसी लोग 'आतर' अर्थात् अग्नि को सम्भवतः ज्ञान का प्रतीक मानकर पूजते हैं।

उपर्युक्त गाथा 'अहुनवैती' में सत-असत का गम्भीर विवेचन किया गया है। उनका मूल सिद्धान्त इसी भाग में संकलित है। उसमें बताया गया है कि जीवन में सत और असत इन विरोधी शक्तियों का महत्त्व है। असत की उपस्थिति से ही सत का मूल्य आंका जा सकता है। दुख, प्रतिकूलता, अन्धकार और मृत्यु के होने से ही सुख, अनुकूलता, प्रकाश और अमरता का मूल्यांकन होता है। जीवन की क्षणभंगुरता समझकर ही मोक्ष की अभिलाषा होती है।

सांख्य के प्रकृति और पुरुष की तरह जरथुशत्र ने संसार के विकास के लिए सत और असत की उपस्थिति आवश्यक समझी है। उनके अनुसार भाव के अनुसार ही अभाव का महत्त्व है।

जरथुशत्र ने कर्म-मार्ग पर जोर दिया है। निष्काम कर्म अत्यन्त आवश्यक है। दुखियों की सहायता करना महान पुण्य है। निष्काम सेवा, परोपकार, दया, प्रेम, त्याग, उदारता आदि दैवी गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही मनुष्य कहा जा सकता है। मानवता की उन्नति के लिए परस्पर की सहानुभूति महान साधन है।

महात्मा जरथुशत्र ने मन, वचन तथा कर्म से पवित्रता तथा सत्य-पालन पर बहुत जोर दिया है। सत्य भाषण और सत्याचरण के समान संसार में कोई धन नहीं है; परन्तु सत्य भाषण के साथ मीठे वचन का प्रयोग करना चाहिए।

इस मत का सार 'अश' के नियमों की श्रेष्ठ भावना है। 'अश' के अर्थ—व्यवस्था, संगति, अनुशासन, पवित्रता, सत्यशीलता, परोपकार आदि हैं।

इस मत के अनुसार 'वोहू महह' (विचार एवं अन्तरध्वनि) के शब्द जो सुन पाते हैं और उनके अनुसार कर्म करते हैं वे स्वास्थ्य और अमरत्व को

प्राप्त करते हैं। यह मत मृत्यु के बाद भी भावी-जीवन मानता है।

पारसी धर्म की नैतिकता का महान भवन निम्न तीन भीतों पर खड़ा है—

हुमत = अच्छे विचार।

हुख्त = अच्छे उच्चार (वाणी)।

हुवशर्त = अच्छे आचार।

संसार में कुल एक लाख तीस हजार (1, 30, 000) पारसी हैं। उनमें एक लाख भारत में, सत्तरह (17) हजार ईरान में, आठ हजार पाकिस्तान में, एक हजार इंग्लैण्ड में तथा चार हजार विश्व के अन्य देशों में रहते हैं।

किसी विचार से दुनिया भर में पारसी डेढ़ लाख (1, 50, 000) हैं।

वर्धमान महावीर

महात्मा वर्धमान महावीर विरक्त मण्डल के एक चमकीले तारे हैं जो आज ढाई हजार वर्षों से विश्व के लिए अहिंसा, तप और आत्मज्ञान का प्रखर प्रकाश विकीर्ण कर रहे हैं। उनका संक्षिप्त परिचय यहां प्रस्तुत है।

1. जन्म और आरम्भिक जीवन

बिहार प्रदेश में, पटना से उत्तर लगभग पैंतालीस किलोमीटर दूर पर वेनग्राम (आज के वसाढ़) में महात्मा महावीर का जन्म ईसा पूर्व छठीं शताब्दी में हुआ था। पिता का नाम सिद्धार्थ था जो गांव के मुखिया थे और माता का नाम त्रिशला था। कुछ लोगों का कहना है कि सिद्धार्थ केवल गांव के मुखिया नहीं किन्तु राजा थे। महावीर के माता-पिता पार्श्वनाथ के अनुयायी थे।

कल्पसूत्र ग्रंथ के अनुसार जब महावीर की आत्मा जन्म धारण करने के लिए उन्मुख हुई तो उसने एक ब्राह्मणी के गर्भ में प्रवेश किया; परन्तु कोई भी तीर्थंकर ब्राह्मणवंश में नहीं पैदा हुआ था, इसलिए इन्द्र ने महावीर की आत्मा को ब्राह्मणी से निकालकर लिच्छवि राजकुमारी त्रिशला के उदर में पहुंचा दिया। वस्तुतः यह ब्राह्मणों से क्षत्रियों को ऊंचा सिद्ध करने का प्रयास है।

महावीर आठ वर्ष की उम्र में पाठशाला भेजे गये। वे तीव्र संस्कारी होने से थोड़े समय में ही विद्वान हो गये। कुछ का मत है कि वे पाठशाला गये ही नहीं, किन्तु अपने तीव्र संस्कार के कारण स्वतः सर्वविद्या सम्पन्न हो गये।

दिगम्बरो के अनुसार महावीर बालब्रह्मचारी रहे, किन्तु श्वेताम्बरो के अनुसार उनका यशोदा नाम की कन्या से विवाह हुआ था और उनको अनुजा नाम की एक पुत्री हुई थी, और वे पीछे विरक्त हुए थे।

2. गृहत्याग और तप

महावीर की अट्ठाइस वर्ष की उम्र में उनके माता-पिता मर गये; परन्तु अपने भाई तथा जनता के प्रति सहानुभूति रखकर वे दो वर्ष घर पर रहकर विरक्त हुए और घर-बार छोड़कर साधु जीवन अपना लिये। कहा जाता है घर छोड़ते समय उन्होंने तीन सौ अट्ठासी करोड़ असी लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान किया था। यह भी अतिशयोक्ति है।

महावीर अपने दोनों हाथों से अपने बाल नोचकर पार्श्वनाथ के मत में दीक्षित हो गये। महावीर स्वामी ने बारह वर्षों तक घोर तप किया, परन्तु उन्हें शांति न मिली। फिर वे उज्जैन चले गये। वे वहां शिव-मन्दिर में तप करते रहे। अन्त में पार्श्वनाथ पर्वत के समीप बहने वाली रिजुपालिका नदी तट पर चले गये। वहां जंभक नाम का गांव था। वहां एक किसान के खेत में पुराना मन्दिर था। वहीं तपस्या करते हुए उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई।

वे केवल ज्ञान होने के बाद निर्द्वन्द्व हुए। कुछ के विचारों से वे तेरह वर्षों तक कम-से-कम एक वस्त्र का प्रयोग करते रहे और कुछ के विचारों के अनुसार वे जो एक वस्त्र घर से पहनकर निकले थे वही तीन वर्षों तक उनके शरीर पर फटते-फटते बना रहा, तथा उसके पूर्णतया जीर्ण होकर गिर जाने पर वे सदैव के लिए नंगे हो गये।

जिस पार्श्वनाथ के मत में महावीर स्वामी दीक्षित थे उसमें बहुत दुर्बलताएं भर गयी थीं। इसलिए उन लोगों का साथ छोड़कर उन्होंने उस मत का सुधार करते हुए उसका नवीनीकरण किया। पार्श्वनाथ के मत में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह ये चार व्रत थे। महावीर स्वामी ने उसमें ब्रह्मचर्य व्रत को भी सम्मिलित किया। पार्श्वनाथ-मत वाले कपड़े पहनते थे, किन्तु महावीर स्वामी ने उसकी आवश्यकता नहीं समझी। अतः वे जीवनभर नग्न बने रहे।

3. प्रथम आजीवक मत

कहा जाता है कि महावीर स्वामी प्रथम छह वर्षों तक मंखलिपुत्र गोशाल के साथ रहे जिनका आजीवक नाम का सम्प्रदाय था। वैसे आजीवक सम्प्रदाय वाले व्रत, उपवास, तप आदि भी करते थे और कहते थे कि मांस, मदिरा तथा मोहिनी (स्त्री) से दूर रहना चाहिए, परन्तु समय-समय पर वे इनका छककर उपभोग भी कर लेते थे। आजीवक लोक, कर्म, उद्धान, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम आदि को नियति के अधीन मानते थे। इनके नंगे रहने का भी उल्लेख मिलता है। ये स्त्रियों के सहवास से परहेज नहीं रखते थे। उल्लेख मिलता है कि स्वयं मंखलिपुत्र गोशाल शराबपान, नाच-गान तथा भोग-विलास में लवलीन रहते थे।

उपर्युक्त कारणों से महावीर स्वामी ने इन आजीवकों का साथ छोड़ दिया और एक बार गोशाल को खूब फटकारा। कहा जाता है श्रावस्ती में गोशाल ने महावीर तथा उनके अनुयायियों से लड़ाई-झगड़े भी किये, परन्तु अन्त में वे महावीर स्वामी के अनुयायी हो गये।

4. महावीर स्वामी का प्रथम शिष्य

गौतम इन्द्रभूति नाम का एक ब्राह्मण था। उसके नौ भाई और थे। इस प्रकार वे सब दस भाई थे। पावानगर में वे निवास करते थे जो आज-कल

बिहार प्रदेश के नालंदा जिले में पड़ता है। गौतम कर्मकांडी थे। वे एक यज्ञ करने जा रहे थे। उसमें बहुत-से पशुओं की बलि चढ़ने वाली थी। महावीर स्वामी उस समय वहीं निवास कर रहे थे। उन्होंने इस यज्ञ का घोर विरोध किया। इसके परिणाम में गौतम आदि दसों भाई महावीर स्वामी से विवाद में उलझ गये। परन्तु अंततः उनके वक्तव्य से गौतम तथा उनके भाइयों को संतोष मिल गया और वे अपना कर्मकांड छोड़कर महावीर स्वामी के शिष्य हो गये। गौतम के पांच सौ अनुयायी थे, वे भी महावीर स्वामी के शिष्य हो गये। कहा जाता है कि वे दस ब्राह्मण-बन्धु ही महावीर के संघ के दस गणधर बने। यह भी कहा जाता है कि गौतम किसी ब्राह्मण द्वारा महावीर स्वामी के सिद्धान्त सम्बन्धी एक श्लोक सुनकर उसके अर्थ को समझने के लिए उनके पास गये और जब महावीर स्वामी द्वारा उसे समझ लिये तब वे अपने भाइयों तथा अनुयायियों सहित उनके शिष्य हो गये।

5. गौतम को उपदेश

महावीर स्वामी ने गौतम को उत्तम पात्र देखकर उन्हें यह उपदेश दिया— “जैसे वृक्ष से पत्ते झड़ जाते हैं वैसे जीवन एक दिन समाप्त हो जायेगा। जीवन तो उसी प्रकार नश्वर है जैसे कमलपत्र पर पड़ी ओस की बूंद। यह जीव असंख्य योनियों में भटकता हुआ आया है। मानव जीवन बड़े सौभाग्य का फल है। स्वर्ग में जन्म लेना भी लाभकर नहीं है। मानव जीवन में ही कर्मबन्धन काटे जा सकते हैं। हे गौतम! अथाह संसार-सागर को पारकर तुम मानव जीवन रूपी किनारे पर लग गये हो जो मोक्ष-साधना करने योग्य है। तुम अपना समय नष्ट क्यों कर रहे हो! बुढ़ापा आने पर शक्तिहीन हो जाओगे और कुछ नहीं कर सकोगे। मोक्ष-साधना करने का यही समय है। अब क्यों नहीं जाग जाते हो!”

महावीर स्वामी की उक्त शिक्षा का गौतम पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि वे उनके अनन्य भक्त हो गये। कहा जाता है कि गौतम की महावीर स्वामी के प्रति आजीवन रागात्मक भक्ति बनी रही। इसलिए महावीर स्वामी के शरीरांत के बाद गौतम को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ और वे मुक्त हुए।

6. महावीर स्वामी और जैनमत

जैनमत पहले से चला आ रहा था। इसका मूल ऋषभदेव से माना जाता है। उसके बाद अजीतनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दनाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपाश्वर्नाथ, चन्द्रप्रभु, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ तथा पाश्वर्नाथ हुए। इस प्रकार ऋषभदेव को लेकर

उक्त तेईस तीर्थकरों के बाद ईसा पूर्व छठीं शताब्दी में चौबीसवें तीर्थकर महावीर स्वामी हुए। इतना परम सत्य है कि महावीर स्वामी के जीवनकाल के एक हजार वर्ष बाद ही जैनमत के शास्त्रों एवं साहित्यों की रचना हुई। महावीर स्वामी के पहले जैनमत का कोई ग्रंथ नहीं था।

महावीर स्वामी परम विरक्त और महान तपस्वी थे। वे मानते थे कि तप से पूर्व तथा पूर्वजन्मों के पाप नष्ट होते हैं तथा मन, वाणी और वचनों का संयम कर लेने से नये कर्म नहीं होते।

महावीर स्वामी के विचारों का प्रचार बिहार तथा उत्तर प्रदेश में खूब था। उनके भक्तों का बहुत बड़ा विस्तार था तथा विरक्त साधुओं का बहुत बड़ा समाज। वे जीवन भर सत्योपदेश करते हुए भ्रमण करते रहे और आखिर में बिहार के पावाग्राम में उनका शरीरान्त हुआ। उनका स्मारक पावाग्राम से कुछ दूर पर पावापुरी में निर्मित है।

इनके साधुओं की पांच श्रेणियां हैं—सिद्ध, अरहत, आचार्य, उपाध्याय और साधु। इसे पंच परमेष्ठिन कहा जाता है। जैनमत का पूरे भारत में खूब प्रचार हुआ, और आज भी जैनमत एवं जैन-दर्शन भारत का प्रसिद्ध मत एवं दर्शन है। जैनमत का सार है दूसरे पर दया करना और संसार की वासनाओं का त्याग कर तथा अपने चेतन स्वरूप में स्थित होकर मुक्त हो जाना।

जैन धर्म का सार एक श्लोक में इस प्रकार है—

आस्रवो भवहेतुः स्यात् संवरो मोक्षकारणम्।

इतीयमार्हतो दृष्टिरन्यदस्याः प्रपञ्चनम् ॥

अर्थात् आस्रव (कर्मों का प्रवाह) आवागमन का कारण है और संवर (कर्मों का नाश) मोक्ष का हेतु है। अर्हत (जीवन्मुक्तों) का यही उपदेश है। उनके दूसरे उपदेश इन्हीं के विस्तार हैं।

तथागत बुद्ध

विरक्त-परम्परा में तथागत बुद्ध एक अत्यन्त वैभवशाली नाम है, जिसकी बड़ाई करना सूरज को दीपक दिखाना है, जिसके ज्ञान और साधना की गंगा में विश्व का बहुत बड़ा क्षेत्र आप्लावित है, 'आर्नल्ड' के शब्दों में जो 'लाइट ऑफ एशिया' है, धर्म के उस महान अनुशास्ता का यहां थोड़ा परिचय प्रस्तुत है।

1. सिद्धार्थ का जन्म

तथागत बुद्ध का प्रथम नाम सिद्धार्थ था। शाक्यवंशीय राजा सुद्धोधन कपिलवस्तु में राज कर रहे थे जो उत्तर भारत में आज के बस्ती के उत्तर स्थित था।

ईसा के 563 वर्ष के पहले बैसाख महीने की पूर्णिमा के दिन राजा सुद्धोधन के औरस तथा माता महामायादेवी के गर्भ से सिद्धार्थ नामक बच्चा उत्तरी भारत के लुम्बनी वन में पैदा हुआ, जब गर्भवती रानी महामाया देवी अपनी सखियों तथा रक्षकों के साथ अपने पीहर जा रही थी। जन्म से सात दिन के बाद माता मायादेवी का देहान्त हो गया। अतएव मां की बहिन (सौतेली मां) महाप्रजापति गौतमी ने बच्चे का पालन किया।

2. सिद्धार्थ की चिंतनशीलता और वैराग्य

राजा सुद्धोधन के एक हजार हल चल रहे थे। एक दिन कृषि सम्बन्धी उत्सव था। राजा स्वयं हल चला रहे थे। बालक सिद्धार्थ जामुन-पेड़ के नीचे पत्थी मार, आंखें बन्द कर समाधि में लग गया। यह देखकर सब आश्चर्य में पड़ गये। सिद्धार्थ चिंतनशील और मननशील थे। वे अपना समय हास-परिहास में नहीं बिताते थे। उनकी इस गम्भीरता से राजा सुद्धोधन डरने लगे। वे सदैव शंकालु बने रहते थे कि इस बुढ़ापा में जन्मा होनहार इकलौता लड़का कहीं वैरागी न हो जाये। राजा ने राजकुमार सिद्धार्थ के चारों ओर भोगों की सामग्री सजा रखी थी और ऋतुओं के अनुसार उनके लिए अनेक महल बनवा रखे थे।

राजकुमार सिद्धार्थ अनेक जन्मों के शुद्ध संस्कारी थे; अतः छोटी-छोटी घटनाओं से भी उनको बड़ा मोड़ मिलता था। एक बार उनके चचेरे भाई

देवदत्त ने एक हंस को बाण मार दिया। हंस की पीड़ा तथा उसके स्वजनों की व्याकुलता देखकर सिद्धार्थ करुणा से भर गये और प्राणियों पर उनकी वह करुणा जीवनपर्यंत बरसती रही।

सुन्दरी राजकुमारी यशोधरा से सिद्धार्थ का विवाह हुआ था। सिद्धार्थ की गम्भीर दशा देखकर यशोधरा ने हर प्रयत्न से सिद्धार्थ पर अपना मायाजाल फेंककर उनको मोहित करने की चेष्टा की थी। सिद्धार्थ को एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसको हम राहुल के नाम से जानते हैं। पुत्र उत्पन्न होने के बाद से सिद्धार्थ को विशेष उदासीनता रहने लगी। वे विचारते थे कि राज्य, धन, पत्नी—ये सब बन्धन के कारण थे ही, पुत्र तो निश्चय ही मार्ग का बड़ा रोड़ा है। पुत्र ग्रसने वाला 'राहु' है इसलिए लड़के का नाम 'राहुल' रखा।

उनके अन्दर वैराग्य की आग सुलग रही थी। कहा जाता है कि जब एक दिन उन्होंने रोगी, वृद्ध और मृतक को देखा तब उनके मन में एकदम उथल-पुथल हो गयी। वे एकांत में अपने आप से पूछने लगे—“क्या मैं भी रोगी तथा बूढ़ा हो जाऊंगा? क्या मैं भी एक दिन मर जाऊंगा? और जब एक दिन मरना है तब यह सब किस काम का? क्यों न मैं सत्य की खोज करूं? क्यों न मैं रोग, बुढ़ापा और मौत से छुटकारा लेने का पंथ पकड़ूं?”

आग लगी हो और उसमें घी पड़ जाये तो क्या पूछना? सिद्धार्थ को किसी साधु के गीत सुनाई पड़े—

नरपुंगव जन्ममृत्युभीतः

श्रमणः प्रव्रजितोस्मि मोक्षहेतोः ।

अर्थात्—“हे नर श्रेष्ठ! जन्म-मरण के भय से, उससे छूटने के लिए मैंने प्रव्रज्या ले ली है, मैं संन्यासी हो गया हूं।” उपर्युक्त सारी बातें गौतम के विवेकी मन को मथती रही होंगी। किन्तु निम्न घटना ने उन्हें पूर्ण विरक्त बना दिया।

शाक्यसंघ में हर शाक्यवंशी की अपने बीस वर्ष की उम्र में दीक्षा होती थी और उसे शाक्यों की सभा में यह व्रत लेना पड़ता था कि वह अपने तन, मन तथा धन से शाक्यों के स्वार्थ की रक्षा करेगा, संघ की सभाओं में उपस्थित रहेगा, बिना किसी भय और पक्षपात के किसी भी शाक्य का दोष कह देगा, उस पर कोई दोष लगाये तो दोष होने पर उद्वेग रहित होकर स्वीकार लेगा और दोष न होने पर वैसा कह देगा। यदि वह व्यभिचार, हत्या और चोरी करेगा तथा झूठी साक्षी देगा तो संघ का सदस्य न रह सकेगा। सिद्धार्थ गौतम बीस वर्ष की उम्र में शाक्य संघ के सदस्य बन गये तथा तत्परतापूर्वक अपने व्रत का पालन करते हुए अपने अट्टाईस वर्ष की उम्र तक व्यतीत किये।

शाक्यों और कोलियों की राज्यसीमा की विभाजक रेखा रोहिणी नदी थी। दोनों उसी से अपने खेत सींचते थे। दोनों रिश्तेदार थे और आये दिन पानी को लेकर परस्पर झगड़े की स्थिति में आ जाते थे। जब गौतम की उम्र अट्ठाइस वर्ष की हुई तब शाक्य और कोलियों में पानी को लेकर विवाद हुआ। शाक्यों ने कोलियों से युद्ध करने का मन बनाया।

गौतम ने इसका विरोध किया कि युद्ध से दोनों तरफ के हित की हानि होती है। परंतु अधिसंख्यक शाक्य युद्ध के समर्थन में एक मत हो गये।

सेनापति ने शाक्य युवकों को सेना में भरती होने के लिए आमंत्रित किया। शाक्यों के नियम के अनुसार गौतम के सामने तीन विकल्प थे—(1) सेना में भर्ती होकर युद्ध में भाग लेना, (2) फांसी पर लटकना या देश निकाला स्वीकार करना अथवा (3) उनके परिवार का सामाजिक बहिष्कार होना और उनके खेतों का जब्त कर लिया जाना। गौतम ने बीच वाला विकल्प पसंद किया—घर से निकल जाना।

शाक्य-नरेश साकेत-नरेश के अधीन रहते थे। सेनापति ने कहा कि आप देश से निकल जायेंगे तो साकेत-नरेश हम लोगों को दंडित करेगा कि तुम लोगों ने गौतम को निकाला है। गौतम ने कहा कि मैं संन्यासी बनकर निकलूंगा, इससे आप लोगों पर दोष नहीं लगेगा।

गौतम ने पिता और माता गौतमी से अपना लक्ष्य बताया। वे दोनों दुखी और मूक थे। यशोधरा ने जो गौतम की पत्नी थीं, गौतम के विचारों का समर्थन किया और गौतम घर तथा राज्य छोड़कर संन्यासी हो गये।¹

सिद्धार्थ अपने वैराग्य उदय होने के सम्बन्ध में स्वयं कह रहे हैं—

“अत्तदण्डा भयं जातं, जनं पस्सथ मेधकं।

संवेगं कित्तयिस्सामि यथा संविजितं मया ॥ 1 ॥

फन्दमानं पजं दिस्वा मच्छे अप्पोदके यथा।

अञ्जमञ्जेहि व्यारुद्धे दिस्वा मं भयमाविसि ॥ 2 ॥

समन्तसरो लोको, दिस्सा सब्बा समेरिता।

इच्छं भवनमत्तनो नाद्दसासिं अनोसितं।

ओसाने त्वेव व्यारुद्धे दिस्सा मे अरति अहु ॥ 3 ॥

अर्थात्—शस्त्र धारण करना भयावह लगा। (उससे) यह जनता कैसे झगड़ती है देखा। मुझमें संवेग (वैराग्य) कैसे उत्पन्न हुआ यह मैं बताता हूँ ॥ 1 ॥ अपर्याप्त पानी में जैसे मछलियां छटपटाती हैं; वैसे एक दूसरे से विरोध करके

1. डॉ० भीमराव अम्बेडकर कृत “भगवान बुद्ध और उनका धर्म” प्रथमकांड, पहला भाग।

छटपटाने वाली प्रजा को देखकर मेरे अंतःकरण में भय उत्पन्न हुआ ॥ 2 ॥ चारों ओर का जगत असार दिखाई देने लगा। दशों दिशाएं कांप रही हैं ऐसा लगा और उसमें आश्रय का स्थान खोजने पर निर्भय स्थान नहीं मिला, क्योंकि अन्त तक सारी जनता को परस्पर विरुद्ध हुए देखकर मेरा जी ऊब गया ॥ 3 ॥¹

वे और कहते हैं—

“किसी भी बुद्धिमान के लिए राज्याधिकार कैसे उचित हो सकता है, जहां चिंता है, राग-द्वेष है, क्लान्ति है और है दूसरों के प्रति अन्याय।”

वे आगे कहते हैं—“सोने का महल तो लगता है जैसे उसमें आग लगी है। अच्छे-से-अच्छे भोजन विष मिले प्रतीत होते हैं और कमलों के फूल से आच्छादित शय्या पर लगता है जैसे मगरमच्छ लोट रहे हों।”

(महात्मा बुद्ध, 137)

सिद्धार्थ की अवस्था उस समय 29 वर्ष की थी। आषाढ़ पूर्णिमा (उत्तराषाढ़ नक्षत्र) की रात को सिद्धार्थ ने घर से निकलकर छंदक नामक सेवक को जगा सवारी लाने को कहा। सेवक कंधक नामक घोड़े को लाया। सिद्धार्थ उस पर बैठकर रात-ही-रात तीस योजन दूर अनोमा नदी पर पहुंचे।

3. सत्य की खोज, तप और बुद्धत्व प्राप्ति

सिद्धार्थ नदी में घोड़े सहित उतर गये। छंदक घोड़े की पूंछ पकड़कर साथ-साथ नदी पार गया। सिद्धार्थ ने अपना राजसी वस्त्र उतारकर छंदक को दे दिया और अपनी कटार से अपने राजसी बाल काट डाले। छंदक भी साथ-साथ साधु होना चाहा; परन्तु सिद्धार्थ ने उसे घोड़ा सौंपकर लौटा दिया, और कहा कि जब तक मैं बुद्धत्व (सिद्धि) न प्राप्त कर लूंगा, कपिलवस्तु न लौटूंगा।

सिद्धार्थ ने अनोमा नदी के पार अनूपिया नामक कस्बे के आम्रवन में एक सप्ताह व्यतीत किया। वे पुनः वहां से तीस योजन चलकर राजगृह पहुंचे। राजगृह मगध की राजधानी थी।

सिद्धार्थ राजगृह में अनेक घरों से भिक्षा मांगकर एक पर्वत के पास भोजन करने बैठे। उस भोजन में अनेक घरों की सामग्री होने से वह विचित्र हो गया था। सिद्धार्थ ने जब मुख में ग्रास डाला तब उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मानो भीतर से आंत ही निकल आयेगी। उनको वह भोजन रुचिकर नहीं लग रहा

1. डॉ० अंबेडकर रचित भगवान बुद्ध और उनका धर्म, भदंत आनंद कौसल्यायन कृत भूमिका।

था। तुरन्त उनको विवेक जाग्रत हो गया और वे अपने आप को धिक्कारने लगे—“सिद्धार्थ! तूने अन्नपान सुलभ कुल में तीन वर्ष के पुराने सुगंधित चावल का भोजन किये जाने वाले स्थान में पैदा होकर भी, गुदरीधारी भिक्षु को देखकर सोचा था कि मैं भी कब इसी तरह भिक्षु बनकर भिक्षा मांग भोजन करूंगा, क्या वह भी समय होगा!—और यही सोच घर से निकला था। अब यह क्या कर रहा है!” इस प्रकार उन्होंने अपने आप को समझाकर तथा निर्विकार भाव होकर भोजन किया। उस समय ‘राजगृह’ का राजा ‘बिम्बसार’ सिद्धार्थ को मिला और उन्हें घर लौट जाने को कहा; परन्तु जब उन्हें दृढ़ देखा तब कहा कि मुझे पुनः दर्शन दीजियेगा।

सिद्धार्थ वहां से चलकर एक वनखण्ड में गये जहां अनेक ऋषिगण साधना में लगे थे। वे सांख्यमतवादी ‘आलार कालाम’ तथा वैशेषिकवादी ‘उद्दक-राम-पुत्र’ के पास कुछ-कुछ दिन रहे तथा समाधि-अभ्यास सीखे, परन्तु उन्हें सन्तोष न हुआ। उन्होंने दूसरे अनेक तपस्वियों के पास जाकर उनकी श्रद्धापूर्वक सेवा की, उनके निर्देशानुसार तपस्या की; परन्तु उनको उनसे भी सन्तोष न होने से उन तापसों से विनम्रता प्रकट करते हुए आगे बढ़ते रहे।

वे भ्रमण करते हुए ‘उरुवेला’¹ पहुंचे। तप करने लगे। वहां पांच तापस साधु मिले। वे सिद्धार्थ के पास रहने लगे और छहों ने छह वर्ष निरन्तर तप किया। सिद्धार्थ का शरीर तप से सूख गया और काला पड़ गया। एक दिन वे घूमते समय निर्बलता से गिर पड़े। उन्होंने तप में सार नहीं देखा और पुनः ग्राम से भिक्षा लेकर खाने लगे तथा कुछ दिनों में स्वस्थ हो गये। इधर पांच साथी तपस्वियों ने सिद्धार्थ को समझा कि यह तो तप छोड़कर देह पालने लगा है, अतः वे उनका साथ छोड़कर ऋषिपत्तन (सारनाथ-वाराणसी) वन में चले गये।

सिद्धार्थ को यह अनुभव हुआ कि अधिक तप ठीक नहीं है। उन्होंने एक सुजाता नाम की बुढ़िया के हाथ की खीर खायी और निरंजना नदी के तट पर एक पीपल पेड़ के नीचे ध्यान में सात सप्ताह व्यतीत किये। उन्हें एक रात्रि प्रातः होने के पहले ज्ञान का रास्ता दिखाई दिया और उनको पूर्ण शांति मिली। उस दिन से वे तथागत तथा बुद्ध कहलाने लगे। जो सत्य को पा जाये उसका नाम तथागत तथा ज्ञानवान को बुद्ध कहते हैं।

सात सप्ताह के बाद ‘तपसु’ तथा ‘भल्लिक’ नाम के दो व्यापारी उत्कल (उड़ीसा) के पश्चिम जा रहे थे। वे तथागत बुद्ध को भोजन कराये तथा उनसे दीक्षा लिये। वे महात्मा बुद्ध के प्रथम दो गृहस्थ शिष्य हुए।

1. उरुवेला गया के पास था जो बिहार में पड़ता है।

4. धर्म प्रचार

तथागत बुद्ध ने सोचा कि मैंने जो ज्ञान प्राप्त किया है उसका लोगों में प्रचार करूं। परन्तु पुनः उनको संदेह हुआ कि काम, क्रोध तथा राग-द्वेष से मलिन मानव मेरी बातों पर क्या ध्यान देगा! अतः यह झमेला छोड़कर शांत रहें। परन्तु पुनः विचार हुआ कि इस संसार रूपी घोर रात्रि में कुछ लोग शुद्ध संस्कारी हैं जो जाग रहे हैं और वे पथप्रदर्शन चाहते हैं। अतएव उन्होंने सोचा कि पहले मैं अपने पूर्व गुरुओं 'आलार कालाम' तथा 'उद्दक-राम-पुत्र' को उपदेश दूं और वे इसके लिए चले; परन्तु रास्ते में पता चला कि उनका देहांत हो गया है। अतः उन्होंने पुनः सोचा, चलो हम अपने पंचवर्गीय तपस्वी मित्रों को ही क्यों न चेतावें! अतः वे ऋषिपत्तन (सारनाथ) आ गये और प्रथम बार उन साधुओं को उपदेश दिया जिसको महात्मा बुद्ध का प्रथम 'धर्मचक्र प्रवर्तन' कहा जाता है। वे पांचों तपस्वी बुद्ध के शिष्य हो गये। तथागत बुद्ध सारनाथ में ही वर्षावास किये और उन्होंने अन्य 55 साधकों को दीक्षा दी। इस प्रकार सब 60 भिक्षु हो गये। वर्षा बाद सबको विभिन्न प्रदेशों में भेजकर स्वयं 'उरुवेला' की ओर चल पड़े।

तथागत बुद्ध ने पथ में अनेक लोगों को शिक्षा-दीक्षा दी। उरुवेला के काश्यप आदि तीन जटिल भाइयों को प्रभावित कर उन्हें शिष्य बनाया।

तथागत बुद्ध ने राजा 'बिम्बसार' की पूर्व प्रार्थना का स्मरण कर कि मुझे 'पुनः दर्शन दीजियेगा' 'राजगृह' की ओर प्रस्थान कर दिया। वे 'लट्टिवन-उद्यान' में पहुंचे। माली द्वारा पता पाकर राजा बिम्बसार महात्मा बुद्ध से मिलने आया। साथ में ब्राह्मणों का एक बड़ा दल था।

ब्राह्मणों ने देखा कि बुद्ध के साथ में उरुवेला का महान ब्राह्मण काश्यप भी है। वे इस चक्कर में पड़ गये कि काश्यप तथा बुद्ध—दोनों में कौन गुरु एवं कौन शिष्य है! यह बात तथागत बुद्ध समझ गये। अतएव ब्राह्मणों के भ्रम को मिटाने के लिए उन्होंने काश्यप से कहा—“काश्यप! क्या समझकर तुमने आग छोड़ी? क्यों अग्निहोत्र त्यागा?”

काश्यप ने कहा—“भगवन! यज्ञ से भौतिक भोग मिलना बताया जाता है; परन्तु यह मल है, विकार है। अतः मैं इनसे विरक्त होकर रहता हूं। मैं न यज्ञ करता हूं न हवन।”

राजा बिम्बसार ने तथागत बुद्ध को अपने उद्यान में ठहराया। राजगृह के पास ही दो महान परिव्राजक ब्राह्मण सारिपुत्र तथा मौदगल्यायन रहते थे और वे अविनाशी वस्तु की खोज में थे। वे दोनों तथागत बुद्ध के शिष्य हो गये।

तथागत वेणुवन में विहार करते थे, साथ में विशाल शिष्य-मंडली रहती थी। तथागत बुद्ध का प्रचार जोरों से चला। 'सारिपुत्र' तथा 'मौदगल्यायन' जैसे

उत्तम ब्राह्मण, 'आनन्द' तथा 'देवदत्त' जैसे क्षत्रिय कुमार, 'तपस्सु' और 'भल्लिक' जैसे वैश्य और 'उपलिस' जैसे शूद्र कहे जाने वाले उनके शिष्य हुए। उनके यहां किसी के लिए भेदभाव न था।

राजा सुद्धोधन ने जब अपने पुत्र की महिमा सुनी कि वे एक बड़े महात्मा हुए हैं और अपने ज्ञान से बड़े-छोटे—सभी लोगों को प्रभावित कर रहे हैं, तब उनके पुत्र-वियोग का घाव भरने लगा और आगे चलकर उनका मन बहुत प्रसन्न हुआ। उन्हें सिद्धार्थ के वियोग में जितना दुख हुआ था, उनकी ज्ञान-महिमा सुनकर उतनी ही शांति मिली।

अब राजा सुद्धोधन के मन में यह व्याकुलता रहने लगी कि कब महात्मा बुद्ध के दर्शन होंगे। कहा जाता है कि उन्होंने बारी-बारी अपने नौ मंत्रियों को एक-एक हजार राजकर्मचारियों के साथ वेणुवन बुद्ध को बुलाने के लिए भेजा और सब जाकर बुद्ध के पास भिक्षु (साधु) बन गये। जो बुद्ध के पास जाता वह इतना प्रभावित होता कि उसे अपने घर, कपिलवस्तु राजधानी एवं राजा के संदेश की ही सुधबुध खो जाती।

जब नौ हजार कर्मचारियों के साथ नौ मंत्रियों ने लौटकर कोई संदेश न दिया तब राजा बहुत घबराया और एक 'कालउदायी' नामक मंत्री को अपने पास बुलाया जो बुद्ध का समवयस्क तथा उनका बालसाथी था। राजा ने कहा—तुम जाकर महात्मा बुद्ध को लाओ और हमें उनके दर्शन करा दो। 'कालउदायी' ने कहा—यदि आप मुझे प्रव्रज्या लेने (साधु होने) की आज्ञा दें तो मैं जाऊँ। राजा ने कहा—अरे भाई! जा, उनको लाकर दर्शन करा दे, फिर पीछे तेरा जो मन कहेगा वह हो जाना।

'कालउदायी' ने मगध जाकर तथागत बुद्ध को कपिलवस्तु चलने की प्रार्थना की और एक हजार कर्मचारियों के साथ भिक्षु बन गया। कहा जाता है इस प्रकार 10 हजार तो कपिलवस्तु के भिक्षु तथा 10 हजार पहले के मगध के भिक्षु—सब 20 हजार भिक्षुओं सहित बुद्ध कपिलवस्तु राजधानी में पहुंचे। इसमें घोर अतिशयोक्ति है, परन्तु महात्मा बुद्ध के समय साधु बनने की बाढ़ अवश्य थी।

राजा सुद्धोधन ने बुद्ध का अभिवादन किया, स्वागत किया, किन्तु अन्य शाक्यवंशीय क्षत्रिय लोगों ने घर के लड़कों और युवकों से बुद्ध का अभिवादन तथा स्वागत कराया। वे स्वयं अभिमान-वश अभिवादन नहीं कर सके। उनमें कोई सोचता "बुद्ध तो मेरा भतीजा है, कोई कहता मेरा पौत्र है, कोई कहता मेरा तो छोटा भाई लगता है, मैं उसका कैसे नमस्कार करूँ।" सत्संग पाकर पीछे से क्षत्रिय लोग विनम्र हुए और उनका शिष्यत्व तक स्वीकार किये।

तथागत बुद्ध को न्यग्रोध नामक स्थान में ठहराया गया। पहले दिन की सभा समाप्त हुई। राजा, मंत्री तथा दूसरे लोग भी अगले दिन के लिए तथागत बुद्ध को भिक्षा के लिए निमंत्रण नहीं दिये, क्योंकि वे निमंत्रित ही थे।

तथागत बुद्ध दूसरे दिन भिक्षुओं सहित राजधानी में घूम-घूमकर भिक्षा मांगना आरम्भ किये। यशोधरा ने अट्टालिका के झरोखों से देखा 'तथागत बुद्ध' भिक्षा मांग रहे हैं। राहुल की माता यशोधरा सोचती हैं "जो सोने की पालकी पर चलते थे, वे मूढ़ मुड़ाये भिक्षा मांग रहे हैं।" वे दौड़ी-दौड़ी राजा के पास आयीं और कहने लगीं आपके पुत्र घर-घर भिक्षा मांग रहे हैं।

राजा धोती सम्हालते हुए राजभवन से दौड़ पड़े और तथागत बुद्ध के पास पहुंच गये और उन्होंने उनसे कहा—सुगत! क्या हम भिक्षुओं को भोजन नहीं दे पाते? तथागत बुद्ध ने कहा—हमारे कुल की यही रीति है। राजा ने कहा—न-न, कभी शाक्यवंशी भीख नहीं मांगते। बुद्ध ने कहा—राजन! आपके शाक्यवंश में अवश्य भीख नहीं मांगी जाती; किन्तु मेरे बुद्धवंश में भिक्षा ही की जाती है।

सब लोग मिलने आये; परन्तु राहुल की माता यशोधरा यह कहकर मिलने नहीं आयीं कि भगवन स्वयं कृपा करके दर्शन देगे। बुद्ध अपने शिष्यों के सहित यशोधरा के भवन में उनसे मिलने गये और उन्होंने शिष्यों को समझा दिया कि यशोधरा जिस प्रकार मिलना चाहेगी मिलने देना, कोई उन्हें रोकना नहीं।

राहुल की माता जबसे सुनी थीं कि सिद्धार्थ काषाय वस्त्र धारण कर लिये हैं तब से वे भी काषाय वस्त्र धारण करने लगी थीं। इसी प्रकार एक समय भोजन करना, जमीन पर सोना तथा राजसुखों का त्याग कर देना—ये सब तपस्या के गुण यशोधरा में पूर्ण हो गये थे।

यशोधरा ने तथागत बुद्ध से प्रभावित होकर राहुल से कहा कि अपने पिता से आशीर्वाद मांगो। तथागत बुद्ध ने राहुल को भी दीक्षा देकर अपने संघ में मिला लिया। साथ-साथ राजघराने के अनेक युवक तथा नाई भी उनकी शरण लेकर भिक्षु हो गये। तथागत बुद्ध का जनता पर अमिट छाप पड़ा। जो कोई उनके सामने जाता था उनका हो जाता था। श्रावस्ती (गोण्डा से उत्तर) के सेठ अनाथ पिंडक ने बौद्ध विहार बनवाने के लिए साकेतनरेश से जेतवन नामक बाग को उतने मोहर देकर खरीदा जितने से वह बाग ढक जाता। बुद्ध से प्रभावित होकर कोसलनरेश 'प्रसेनजित' एवं सेठानी 'विशाखा' उनके शिष्य हुए। तथागत बुद्ध एक बार बीमार हुए। मगध राजवैद्य जीवक उनकी चिकित्सा करने आये और उलटकर उन्हीं की चिकित्सा हो गयी और वे तथागत बुद्ध के शिष्य हो गये। 'जीवक' राजगृह की प्रमुख वेश्या के पुत्र थे। वेश्या ने उस बच्चे के पैदा होते ही उसे घूर पर फेंकवा दिया था। उसे एक राजपुरुष ने पाला था।

जीवक बड़ा होने पर तक्षशिला विश्वविद्यालय में जाकर वैद्यक की शिक्षा पाये थे और बहुत बड़ा वैद्य हुआ था।

तथागत बुद्ध ने राजाओं के बीच उठे हुए युद्ध को भी शांत किया था। एक उदाहरण काफी है। एक बार शाक्यों और कोलियों में नदी के पानी को लेकर विवाद खड़ा हो गया और तलवारें खिंच गयीं। तथागत बुद्ध ने दोनों को ऐसा उपदेश दिया कि दोनों गले मिले।

5. नारियों का संघ में प्रवेश

पहले चर्चा कर आये हैं कि सिद्धार्थ को पालने-पोषने वाली प्रजापति गौतमी थीं। जब राजा सुद्धोधन मर गये तब गौतमी ने भिक्षुणी की दीक्षा चाही। तथागत बुद्ध ने उन्हें समझाया कि नारियों को घर में ही रहकर साधना करनी चाहिए। उनका भिक्षुणी होना आवश्यक नहीं है और न यह भिक्षुओं के लिए हितकर है। परन्तु वे आग्रह करती रहीं। तथागत बुद्ध के श्रेष्ठ शिष्यों में से आनन्द ने गौतमी के लिए जोर दिया कि इन्हें भिक्षुणी की दीक्षा मिलनी चाहिए। महात्मा बुद्ध ने, अन्दर से न चाहते हुए भी आनन्द के अति आग्रह-वश प्रजापति गौतमी को दीक्षा दी; और फिर तो खुलेआम महिलाएं भिक्षुणी बनने लगीं। तथागत बुद्ध ने कहा था—‘आनन्द! यदि नारियों को संघ में न लिया जाता तो संघ हजार वर्ष चलता; परन्तु यह जो नारियों को संघ में मिला लिया गया है, संघ का पांच सौ वर्ष ही चलना बहुत है।’ और यह उनकी भविष्यवाणी अक्षरशः सिद्ध हुई।

6. उनकी समता दृष्टि

तथागत बुद्ध समता की महान मूर्ति थे। एक बार वे भ्रमण करते हुए वैशाली पहुंचे। वहां की प्रसिद्ध वेश्या आम्रपाली उनके दर्शन के लिए आयी। उसने उन्हें निमंत्रण दिया और तथागत बुद्ध उसे स्वीकार कर उसके घर गये और उसका आतिथ्य स्वीकार किये। इस बात को लेकर लोगों ने विरोध किया; परन्तु तथागत बुद्ध ने जरा भी नहीं माना। उन्होंने कहा हमारे लिए सब बराबर हैं।

7. उनकी सहनशीलता

एक बार एक राजा यज्ञ कर रहा था जिसमें सैकड़ों बकरे कटने वाले थे। तथागत बुद्ध ने राजा के पास जाकर कहा—“यदि बकरों की बलि देने से मनुष्य को स्वर्ग मिलता है तो मनुष्य की बलि देने से और उत्तम स्वर्ग मिलेगा। अतः इन बकरों की बलि न देकर मेरी बलि दे दी जाये।” राजा ने यह बात सुनकर उनकी शरण ले ली और बकरों को छोड़वा दिया।

तथागत बुद्ध त्याग, वैराग्य, समता, शांति, करुणा और मानवता की महान मूर्ति थे, तो भी दुष्ट लोगों ने उनको सताने की बड़ी चेष्टा की। सांप्रदायिक उद्वेग से विरोधियों ने उनको नीचा दिखाने के लिए दुराचारिणी स्त्रियों द्वारा उनको लांछित किये जाने का उपक्रम किया, परन्तु सूर्य पर थूकने पर जो गति होती है वही विरोधियों की हुई।

एक बार श्रावस्ती में विरोधियों ने एक भिक्षुणी की हत्या करके यह प्रचार किया कि बुद्ध के चेले ऐसे दुष्ट हैं कि वे एक भिक्षुणी से व्यभिचार करके उसकी हत्या कर दिये हैं। इसको लेकर प्रजा में भिक्षुओं के प्रति अश्रद्धा हो गयी। सर्वत्र भिक्षुओं को ताने सुनने पड़ते। तथागत बुद्ध ने भिक्षुओं को समझाया—भिक्षुओ! ये अन्धकार के बादल थोड़े दिन हैं। वास्तविकता दस दिन में प्रकट हो जायेगी। तुम लोग उद्वेग-रहित रहो। जब तुम्हें कोई देखकर तुम्हारा अपमान करे, तुम्हें गाली दे, तब तुम उससे कहो—“झूठ बोलने वाले नरक में जाते हैं और जो करके कहते हैं कि मैंने नहीं किया वे भी नरक में जाते हैं।” धीरे-धीरे वास्तविकता खुल गयी। भिक्षुओं को लोग श्रद्धा से देखने लगे।

कोशल-नरेश प्रसेनजित तथागत बुद्ध के प्रेमी थे। तथागत बुद्ध शाक्यवंशीय थे। प्रसेनजित ने सोचा कि यदि शाक्यवंशियों से अपना रक्त-सम्बन्ध जुड़ जाये तो आपसी व्यवहार ज्यादा मधुर हो जायेगा। अतः नरेश ने शाक्यों के पास दूत भेजकर अपना विवाह-प्रस्ताव रखा।

शाक्य लोग कोशल-नरेश को निम्नकोटि का क्षत्रिय मानते थे। अतः वे अपनी कन्या से उनका विवाह नहीं करना चाहते थे। परन्तु कोशल-नरेश के प्रस्ताव को भय-वश ठुकराना भी नहीं चाहते थे; क्योंकि प्रसेनजित बलवान राजा थे। अतः शाक्यों ने अपने राजभवन की एक दासी-पुत्री को, जो सुन्दरी और दक्ष थी, शाक्य-पुत्री बताकर प्रसेनजित को व्याह दी।

उक्त दासी-पुत्री प्रसेनजित की रानी हुई। उसे विडुभ नाम का पुत्र पैदा हुआ। वह जवान हुआ और एक बार अपने ननिहाल कपिलवस्तु गया। उसके साथ सेना थी। सेना के एक जवान को पता लगा कि विडुभ की माता दासी-पुत्री है। यह बात सेना में फैल गयी। विडुभ को दासी-पुत्री की संतान समझकर शाक्यों ने उससे राजोचित व्यवहार करने में भी त्रुटि की। विडुभ को कष्ट हुआ और उसने सोचा कि पिता के मर जाने पर जब मैं राजा बनूंगा तब अपनी सेना से शाक्यों की सामूहिक हत्या कराऊंगा।

तथागत बुद्ध की अवस्था कोई 78 वर्ष की रही होगी। इसी बीच उनके सामने महान दुर्घटना हुई। प्रसेनजित शरीर छोड़ दिये, तब विडुभ ने समस्त शाक्यों को तलवार के घाट उतार दिया। यह परिवार का सम्पूर्ण विनाश

देखकर तथागत बुद्ध अवश्य दुखी हुए होंगे, परन्तु वे जीवन्मुक्त थे। वे उस अवस्था में भी भ्रमण करते हुए शांति का उपदेश देते रहे।

8. देवदत्त का विनाशकारी षड्यन्त्र

बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद जब महात्मा बुद्ध कपिलवस्तु राजा सुद्धोधन को दर्शन देने गये थे, उस समय अन्य लोग तथा राजपुरुषों ने भी तथागत बुद्ध से प्रव्रज्या ली थी; जैसे अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किंबिल, देवदत्त आदि।

तथागत बुद्ध ने कपिलवस्तु में सात दिन रहकर अपने भिक्षुसंघ के सहित कौशांबी¹ के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में जगह-जगह पर उनका भक्तों द्वारा सेवा-सत्कार होता था। यह सब देखकर देवदत्त के मन में हुआ कि मेरा भी ऐसा सेवा-सत्कार हो। देवदत्त धीरे-धीरे तथागत बुद्ध से ईर्ष्या करने लगा। अंततः वह उनका साथ छोड़कर राजगृह चला गया। उस समय राजगृह के राजा 'बिंबसार' थे।

राजा 'बिंबसार' का पुत्र 'अजातशत्रु' था। देवदत्त ने अजातशत्रु से कहा कि तुम अपने पिता को मारकर राजा बनो और मैं बुद्ध को मारकर बुद्ध बनूँ। देवदत्त के निरन्तर के कुसंग से अजातशत्रु अपने पिता राजा बिंबसार की हत्या कर राजगृह पर बैठ गया, और देवदत्त को श्रेय देकर उसे पालने लगा।

तथागत बुद्ध राजगृह में थे। एक बड़ी सभा में बैठे थे। देवदत्त ने उठकर तथागत बुद्ध का नमस्कार किया और कहा कि भगवन्! आप इस भिक्षु-संघ को मुझे दे दें। मैं इस पर शासन करूँगा। आप वृद्ध हो गये हैं। अब आप से यह चलने वाला नहीं है। तथागत बुद्ध ने उसकी बात को अस्वीकार दिया जो स्वाभाविक ही था।

एक दिन देवदत्त ने दूसरी चाल चली। उसने तथागत बुद्ध के सामने पांच शर्तें रखीं—

1. भिक्षु जीवन भर जंगल में रहें; वे गांव-नगर में न जायें।
2. भिक्षु सदैव भिक्षा मांगकर खायें; वे निमन्त्रित भोजन न करें।
3. भिक्षु सदैव गली-कूची में पड़े चिथड़े बटोर और सिलकर पहनें; नये वस्त्र न पहनें।
4. भिक्षु सदैव वृक्षों के नीचे निवास करें; किसी मकान, मठ आदि में न रहें।
5. भिक्षु सदैव मछली-मांस² का सेवन न करें।

1. कौशांबी प्रयाग (इलाहाबाद) के पश्चिम करीब पचास किलोमीटर दूर यमुना के उत्तर तट पर है।

2. भिक्षुओं के लिए भिक्षा में मिले हुए मांस-मछली खाने की छूट थी।

तथागत बुद्ध ने कहा—देवदत्त! जो भिक्षु चाहे वह जीवनभर उपर्युक्त ढंग से रह सकता है और चाहे तो वैसा नहीं रहे। मैं शर्त में नहीं बांध सकता।

देवदत्त ने भिक्षुसंघ में फूट डालने की प्रक्रिया शुरू कर दी और कहा जाता है कि उसने पांच सौ भिक्षुओं को फोड़कर अपने संघ में मिला लिया।

देवदत्त ने तथागत बुद्ध की हत्या करने का कई बार प्रयास किया; परन्तु वह सफल नहीं हुआ। एक बार तथागत बुद्ध एक पर्वत पर निवास कर रहे थे। देवदत्त ने जाकर ऊपर से एक बड़ा पत्थर उनके ऊपर ढकेल दिया। संयोग से वह पत्थर उनके ऊपर न आकर बगल में गिरा, परन्तु उससे एक टुकड़ा टूटकर उनके पैर पर आ गिरा और उनके पैर में गहरी चोट लगी। काफी खून बह गया। तथागत बुद्ध महीनों में चलने-फिरने योग्य हो सके।

तथागत बुद्ध के श्रेष्ठ शिष्य सारिपुत्र के उपदेश से वे सभी भिक्षु देवदत्त के पास से तथागत बुद्ध के पास आ गये जो पहले बहककर देवदत्त के पास गये थे। इससे देवदत्त के मन को धक्का लगा।

पूरी प्रजा देवदत्त का विरोधी हो गयी। अन्ततः अजातशत्रु भी देवदत्त को सहयोग देना छोड़कर तथागत बुद्ध की सेवा करने लगा।

देवदत्त अपने पाप से पीड़ित था। वह बीमार पड़ गया। उसका रक्त कट-कट कर गिरने लगा। उसने पुनः तथागत बुद्ध की शरण में जाने की बात सोची। शिविका पर बैठकर श्रावस्ती चला। किन्तु रास्ते में एक सरोवर पर उसकी मृत्यु हो गयी।

9. आनन्द

तथागत बुद्ध का उनकी पचपन (55) वर्ष की उम्र तक कोई स्थायी परिचारक नहीं था। कोई साधु उनकी कभी किसी प्रकार की सेवा कर देता और कोई साधु कभी किसी प्रकार। अतएव भिक्षु-संघ से तथागत ने कहा कि अब उम्र ढल रही है। मेरे साथ जो भिक्षु मेरे चीवर तथा पात्र लेकर चलता है कई बार वह रास्ते में ही चीवर-पात्र रखकर दूसरी तरफ चला जाना चाहता है। इसलिए एक स्थायी परिचारक होना चाहिए।

सारिपुत्र, मोद्गल्यायन आदि अनेक भिक्षुओं ने सेवा में रहने के लिए प्रार्थना की, परन्तु अनुशास्ता ने उन्हें उस योग्य न समझकर उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। अंततः किसी ने आनन्द से कहा कि तुम क्यों नहीं प्रार्थना करते? आनन्द कुछ हठीले थे, परन्तु अनुशास्ता के परम भक्त थे। उन्होंने कहा यदि अनुशास्ता की इच्छा होगी तो वे स्वयं मेरी सेवा लेंगे। तथागत बुद्ध ने कहा—आनन्द! यदि तुम चाहो तो सेवा में रह सकते हो।

आनन्द ने सेवा करना चाहा और उन्होंने तथागत के सामने पांच शर्तें रखीं—

1. आप मुझे अच्छे वस्त्र न देंगे।
2. आपके लिए आये किसी अच्छे भोजन में से मुझे न देंगे।
3. आप अपने निवास-कक्ष में मुझे निवास करने का स्थान न देंगे।
4. यदि कोई आपके दर्शनार्थ आया है, तो मैं उसे जब कभी भी आपके दर्शन करा सकूँ।
5. यदि आपने किसी को कोई उपदेश दिया है और मैं सेवा में लगे रहने के कारण नहीं सुन सका हूँ, तो यदि मैं उसे सुनना चाहूँ तो आप कृपया मुझे पुनः सुना दें।

आनन्द ने उक्त पांच शर्तों में प्रथम की तीन शर्तें इसलिए रखी थीं कि कोई यह न मान या कह सके कि आनन्द गुरु की सेवा अच्छे कपड़े, अच्छे भोजन तथा अच्छे निवास पाने के लिए करते हैं।

तथागत बुद्ध ने उक्त सभी शर्तें बिना हिचक के स्वीकार लीं। फिर तो आनन्द उनके महानिर्वाण के समय तक सेवा में छाया की तरह लगे रहे।

10. जीवन के अन्तिम दिन और निर्वाण

तथागत बुद्ध का शरीर जरजर हो गया था। उनकी अवस्था 80 वर्ष की हो गयी थी। उन्होंने अपने शरीर का अंत निकट जानकर श्रेष्ठ शिष्य आनन्द से कहा कि अब यह काया जाने वाली है। आनन्द यह सुनकर विह्वल हो गये। तथागत बुद्ध ने कहा—“आनन्द! तुम व्याकुल क्यों होते हो? सारी वस्तुओं का परिवर्तन क्षण-क्षण हो रहा है। जन्म ही मृत्यु का कारण है। तृष्णा का क्षय करो और मुक्ति लो। गुरु तो केवल पथ बताने वाला है। चलना तुम्हें ही पड़ेगा। तुम स्वयं अपनी शरण हो। तुम अपनी शरण में जाओ, सत्य और धर्म का आधार लो।”

तथागत बुद्ध वैशाली से चलकर कुशीनारा के पथ में थे जो गोरखपुर के पास पड़ता है। चुंद नाम का लोहार था। तथागत बुद्ध ने उसके हाथों का भोजन खाया, जो शूकर मार्दव था। उसे खाने से तथागत को पेचिस हो गयी। उन्हें आभास हुआ कि अब शरीर नहीं रहेगा और आनन्द तथा अन्य भिक्षुओं से उन्होंने कहा कि कोई यह न कहना कि चुंद लोहार कलंकी या अपराधी है जिसका भोजन करने से शास्ता का अन्त हो गया, प्रत्युत यह कहना कि वह महा भाग्यशाली है जो उसका अन्तिम भोजन करके बुद्ध महानिर्वाण को प्राप्त हुए।

तथागत बुद्ध रास्ते-रास्ते जा रहे थे और कुशीनगर के वन में पहुंचे। उनकी आज्ञा से आनन्द ने दो साल वृक्षों के बीच कपड़ा बिछा दिया और उस पर वे लेट गये। सब समझ गये कि अब गुरुदेव के शरीर का अन्त है। सब व्याकुल हो उठे। उस समय हजारों भिक्षु इकट्ठे थे।

तथागत बुद्ध ने कहा—“भिक्षुओ! सब कुछ नाशवान है, अतः प्रमाद को छोड़ो, तृष्णा का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करो।” यह थे अन्तिम वाक्य उस महा सन्त के जिसने अपने और दूसरे के हित के लिए अपने आपको साधना में तपा डाला था और महा वैराग्यवान होकर भी जीवनपर्यन्त लोककल्याण के लिए गली-गली घूमता रहा।

तथागत बुद्ध एक महान हस्ती के व्यक्ति थे। वे जात-पांत, हिंसकी कर्मकांड तथा पाखण्ड के सर्वथा विरोधी थे। वे आर्यपुत्र थे; किन्तु आर्य-अनार्य का भेद उनके मन में नहीं था। वे मानवता के पुजारी थे।

कितने बौद्ध बन्धु तथागत बुद्ध की परम्परा को आर्यों से अलग कायम करके भेद-भाव को पुनः जाग्रत करते हैं, जो बुद्ध के उपदेश के विपरीत है। उनका तो उपदेश था मानव-मानव भाई-भाई है। आचरण ही से कोई छोटा-बड़ा होता है, जाति से नहीं।

11. तथागत बुद्ध के समकालीन

जिस समय तथागत बुद्ध ने भिक्षु वेष में होकर प्रव्रज्या ली थी देश में काफी मानसिक हलचल थी। वैदिक एवं ब्राह्मण दर्शन के अतिरिक्त कोई बासठ (62) दार्शनिक मत थे जो विलक्षण थे। उनमें छह मुख्य दर्शन ध्यान देने योग्य हैं—

12. पूर्णकाश्यप का अक्रियवाद

पूर्णकाश्यप कहते थे कि आत्मा पर कर्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। चाहे हत्या करे-करावे, चोरी करे-करावे, दान करे-करावे, इनका फल आत्मा पर कुछ नहीं। आदमी के मर जाने पर शरीर के तत्त्व अपने-अपने कारण में जा मिलते हैं, फिर कुछ नहीं।

13. मक्खलिगोशाल का नियतिवाद

मक्खलिगोशाल कहते थे कि जो कुछ है पूर्व से निश्चित है। न कोई कुछ कर सकता है और न करा सकता है। संसार तथा प्राणी पर जो घटनाएं घटनी हैं, घटकर रहेंगी। हम बिलकुल नियति के अधीन हैं। जैसे सूत की गोली फेंकने पर अपने आप खुलती जाती है, वैसे सब जीवों का जीवन है, पंडित और मूर्ख दौड़ते हुए आवागमन में पड़कर दुख की समाप्ति करेंगे। ये केवल भाग्यवादी थे।

14. अजित केशकम्बल का उच्छेदवाद

अजित केशकम्बल शायद अपना वेष कम्बल का रखते थे। वे मानते थे कि कर्म का कोई फल नहीं, यज्ञ-हवन बेकार हैं। मनुष्य दुखों के तत्त्वों से बना है। मूर्ख और पंडित मरने के बाद समाप्त हो जाते हैं, आगे कुछ नहीं।

15. प्रकृध कात्यायन का नित्यपदार्थवाद

ये विचारक कहते थे कि मनुष्य सात तत्त्वों से बना है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सुख, दुख और आत्मा। ये सुख-दुख को भी स्वतन्त्र तत्त्व मानते थे और कहते थे कि इस संसार में न कोई मारने वाला है, न मारा जानेवाला, न सुनने वाला, न सुनाने वाला है। सातों तत्त्व निर्विकार हैं, इसलिए किसी कर्म का कोई प्रभाव नहीं। यदि कोई तलवार लेकर किसी को मारे तो कोई मरता नहीं, वह तो तलवार सातों तत्त्वों से हटकर शून्य में गिर जाती है।

16. संजय बेलट्टिपुत्र का अनेकान्तवाद

ये विचारक कहते थे कि यदि मुझसे कोई पूछे कि परलोक है कि नहीं, मुक्तात्मा रहता है कि नहीं, तो मैं न ऐसा कहता हूँ न वैसा कहता हूँ। यदि मैं इसको जानूँ तो बताऊँ। अतएव मैं ऐसा-वैसा कुछ नहीं कहता।

17. वर्धमान महावीर का सर्वज्ञतावाद

ये जैनधर्म के अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर हैं। ये तथागत बुद्ध से ज्येष्ठ थे और वैशाली (बिहार) में जन्में थे। ये राजपुत्र थे। इन्होंने तीस वर्ष की उम्र में वैराग्य धारण किया। ये अनेक आत्मा मानते थे और संयम से कर्मक्षय होकर मोक्ष मानते थे और मुक्तात्मा सर्वज्ञ हो जाता है, यह इनकी धारणा थी।

एक बार इन छहों (उक्त दार्शनिकों) तथा तथागत बुद्ध का राजगृह में एक साथ वर्षा में चौमासा निवास हुआ था। ये छहों दार्शनिक बुद्ध से उम्र बड़े थे।

18. तथागत बुद्ध के वर्षावास

महात्मा बुद्ध का जन्म लुम्बनी में ईसा पूर्व 563 में हुआ तथा गया में ईसा पूर्व 528 में वे बुद्धत्व प्राप्त किये और बुद्धत्व प्राप्ति के बाद वे तीन महीने वर्षा को छोड़कर सदैव विचरण करते हुए उपदेश देते रहे। इस बीच में वर्षा निम्न स्थलों पर बिताये—

| स्थान | ईसा पूर्व |
|------------------------------|-----------|
| 1. ऋषिपत्तन (सारनाथ-वाराणसी) | 528 |
| 2-4. राजगृह | 527-525 |
| 5. वैशाली | 524 |

| | |
|----------------------------------|---------|
| 6. मंकुल पर्वत (बिहार) | 523 |
| 7. त्रयसिं (त्रयसिंश?) | 522 |
| 8. संसुमारगिर (चुनार) | 521 |
| 9. कौशाम्बी (इलाहाबाद) | 520 |
| 10. पारिलेयक (मिर्जापुर) | 519 |
| 11. नाला (बिहार) | 518 |
| 12. वैरंजा (कन्नौज-मथुरा के बीच) | 517 |
| 13. चालिय पर्वत (बिहार) | 516 |
| 14. श्रावस्ती (गोंडा) | 515 |
| 15. कपिलवस्तु | 514 |
| 16. आलवी (अखल) | 513 |
| 17. राजगृह | 512 |
| 18. चालिय पर्वत | 511 |
| 19. चालिय पर्वत | 510 |
| 20. राजगृह | 509 |
| 21-45. श्रावस्ती (गोण्डा) | 508-484 |
| 46. वैशाली | 483 |

[कुशीनारा (गोरखपुर) में निर्वाण 483]

(राहुल कृत दर्शन दिग्दर्शन, पृ० 509)

उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि अन्य जगह 1-1 वर्षा, 5 वर्षा राजगृह, 2 वर्षा वैशाली, 3 वर्षा चालिय पर्वत और श्रावस्ती (गोण्डा) में 26 वर्षा व्यतीत किये। इस प्रकार तथागत बुद्ध अपना पूरा जीवन उत्तर प्रदेश तथा बिहार में ही व्यतीत किये, इसके बाहर वे कभी नहीं गये।

19. बुद्ध दर्शन

तथागत बुद्ध ने चार आर्य सत्य माना है। आर्यसत्य अर्थात् श्रेष्ठ-सत्य। वे हैं—दुख आर्यसत्य, दुख समुदाय आर्यसत्य, दुखनिरोध आर्यसत्य तथा दुख निरोध की ओर ले जाने वाला आर्यसत्य।

दुख आर्यसत्य—जन्म, जरा, रोग, प्रियवियोग, अप्रिय-संयोग, मृत्यु आदि प्रत्यक्ष दुख हैं। वस्तुतः जीवन धारण ही दुख है। यह दुख ऐसा है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता।

दुख समुदय आर्यसत्य—दुख जिससे उदय होता है वह कारण भी है।
दुख के बारह कारण या शृंखलाएं हैं, वे इस प्रकार हैं—

1. अविद्या—तत्त्वज्ञानहीनता।
2. संस्कार—पूर्व जन्म या इस जन्म की शुभाशुभ वासनाएं।
3. विज्ञान—चैतन्यता, संसार का भान होना।
4. नाम-रूप—मन और शरीर की अवस्थाएं।
5. षडायतन—आंख, नाक, कान, जीभ, चमड़ी और मन।
6. स्पर्श—विषयों का भोग।
7. वेदना—सुख, दुख तथा उदासीनता का अनुभव।
8. तृष्णा—अधिक-अधिक लालसा।
9. उपादान—आसक्ति।
10. भव—जन्म।
11. जरा—बुढ़ापा।
12. मरण—प्राणान्त।

दुखनिरोध आर्यसत्य—अर्थात् यह भी श्रेष्ठ सत्य है कि दुखों का निरोध एवं नाश होता है।

दुख निरोध की ओर ले जाने वाला आर्यसत्य—यह भी श्रेष्ठ सत्य है कि दुखों के निरोध के साधन या पथ हैं। दुखनिरोध के आठ क्रमिक मार्ग हैं, जो आर्य अष्टांगिक मार्ग भी कहलाते हैं—

1. सम्यकदृष्टि—पूर्णज्ञान।
2. सम्यक संकल्प—अपने और दूसरे के कल्याण के लिए पक्का निश्चय।
3. सम्यक वचन—असत्य, कटु, चुगुली तथा परनिंदा से दूर रहना।
4. सम्यक कर्मान्त—बुरे कर्मों का त्याग करके पवित्र कर्म करना।
5. सम्यक आजीव—जीवन निर्वाह का पवित्र धन्धा।
6. सम्यक व्यायाम—उचित पुरुषार्थ।
7. सम्यक स्मृति—पूर्ण विचार।
8. सम्यक समाधि—मन का पूर्ण शांत होना।

संक्षेप में कहें तो बौद्धदर्शन इतने में है—

1. प्रत्येत्यसमुत्पाद—प्रत्येत्य = इसके होने से, समुत्पाद = यह होता है।
जैसे दुख के बारह कारण ऊपर दिये गये हैं वे क्रमिक हैं। पहले वाले के होने से दूसरे वाले होते हैं।

2. बन्धन—अविद्या, कर्म और तृष्णा।

3. निवृत्ति—प्रज्ञा, शील और समाधि।

तथागत बुद्ध ने कहा—यो भिक्खवे दुक्खं पस्सति दुक्खसमुदयं पि सो पस्सति, दुक्खनिरोधं पि पस्सति दुक्खनिरोधगामिनिपटिपदं पि पस्सति।

(संयुक्त निकाय 5/437)

अर्थात् भिक्षुओ! जो दुखों को देखता है वह उसके समुदय (कारण) को भी देखता है, दुख निरोध को भी देखता है और देखता है दुखनिरोधगामी मार्ग को भी।

तथागत बुद्ध ने निर्वाण (मोक्ष) की स्थायी सत्ता मानी है। उन्होंने उसको शशाश्रृंगवत मिथ्या नहीं कहा है; यथा—

नत्थेव निव्व्वाणं ससविसाणमिव। (आचार्य बुद्धघोष)

अर्थात्—निर्वाण खरगोश के सींग के समान अभावात्मक नहीं है। अपितु—

अत्थि भिक्खवे अजातं अभूतं अकतं असंखतं।

अर्थात्—भिक्षुओ! निर्वाण अजन्मा, सत्य, अकृत्रिम और असंस्कृत (स्वाभाविक) है।

महान बौद्ध विद्वान नागार्जुन कहते हैं—

द्रष्टव्योपशमं शिवलक्षणं सर्वकल्पनाजालरहितं ज्ञानज्ञेयनिवृत्तिस्वभावं शिवं परमार्थस्वभावम्। परमार्थमजरममरमप्रपञ्चं निर्वाणं शून्यतास्वभावं ते न पश्यन्ति मन्दबुद्धितया अस्तित्वं नास्तित्वं चाभिनिविष्टाः सन्त इति। (मूल माध्यमिक 5/8)

अर्थात्—परमार्थ का स्वरूप है—दृश्यों का उपशमन, शिव स्वरूप, सर्व कल्पना जालरहित, ज्ञान-ज्ञेय-निवृत्ति स्वभाव, कल्याणमय। परमार्थ अजर, अमर, प्रपञ्चशून्य, निर्वाण शून्यता स्वभाव है। परन्तु मन्दबुद्धि वाले जो अस्तित्व-नास्तित्व के मतवाद में उलझे उनमें अभिनिविष्ट हैं, वे इसे नहीं समझ सकते।

यदि आप एक श्लोक में तथागत बुद्ध का शिक्षासार जानना चाहते हैं तो इसे याद कर लें—

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्सुपसंपदा।

सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धानुसासनम् ॥

अर्थात्—सारी बुराइयों-पापों को न करना, भलाईयों को करना और अपने मन को अपने वश में करना, यही बुद्ध की शिक्षा है।

महापुरुष कनफ्यूशियस

कनफ्यूशियस विशाल व्यक्तित्व का परिचय है जिसने अपने विचारों तथा भावनाओं से करोड़ों लोगों को प्रभावित किया है। आइए, उस महापुरुष के विषय में हम कुछ परिचय प्राप्त करें।

1. जन्म और जीवन

आधुनिक चीन के 'किनफू-हियेन' नामक कस्बे का नाम कई सौ वर्ष पूर्व 'त्सिउई' था। उसका 'शू-लिंग-ही' नाम का एक निवासी सम्माननीय सैनिक जीवन बिताकर मजिस्ट्रेट हुआ। उसको एक पुत्र तथा नौ पुत्रियां थीं। अचानक पुत्र मर गया। इस अभाव की पूर्ति के लिए उसने पुनः अपनी शादी की। इस दम्पती से ईसा से 550 वर्ष पूर्व एक पुत्र जन्म लिया जिसका नाम 'क्यू' रखा गया। उसे विद्यार्थी जीवन में 'चुङ्ग-नी' नाम से पुकारा गया और प्रौढ़ होने पर उसे 'कुङ्ग-फू-जी' कहा गया। चीनी लोग आज तक उसे 'कुङ्ग' नाम से पुकारते हैं और विश्व के लोग उसे कनफ्यूशियस के नाम से जानते हैं।

कनफ्यूशियस के जन्म के तीन साल बाद उसके वृद्ध पिता 'शू-लिंग-ही' का निधन हो गया। अतः वह माता की देख-रेख में पला-पुषा और पढ़ा-लिखा। कहा जाता है कि वह मेधासम्पन्न बालक चौदह वर्ष की उम्र तक सब कुछ पढ़ डाला जो उस समय वहां के अध्यापक पढ़ा सकते थे।

कनफ्यूशियस सत्रह वर्ष की उम्र तक पहुंचते ही राजाश्रय पा गया, और उसका धनधान्य बढ़ा। उसकी शादी हुई, बच्चे हुए। परन्तु उसकी चौबीस वर्ष की उम्र में ही माता के मर जाने से उसे बड़ा आघात लगा और वह विशेष एकांत तथा चिंतन में दिन बिताने लगा। इसके कुछ ही दिनों के बाद उसके जीवन में एक घटना और घटी और उसने अपनी सत्ताइस (27) वर्ष की उम्र में किसी कारणवश अपनी पत्नी को छोड़ दिया।

2. मन्त्री पद ग्रहण

'लू' का राजा पहले अपने साथियों के चक्कर में पड़कर कनफ्यूशियस का विरोध ही करता रहा। परन्तु दिनोदिन जब उसकी राज्य व्यवस्था बिगड़ती ही गयी तब उसने उसके सुधार के लिए श्रेष्ठ विचारक कनफ्यूशियस का आधार लिया और उसे अपना प्रधानमंत्री बना दिया।

कनफ्यूशियस के मन्त्रित्व में देश की स्थिति बहुत सुधरी और अनेक लोकहिताय कार्य हुए। उन दिनों वहां मन्त्री पद के साथ न्यायाधीश का भी पद जुड़ा हुआ था। अतएव उन्हें शासन के साथ न्याय भी करना पड़ता था।

एक बार 'त्से' प्रदेश के राजा ने कनफ्यूशियस से पूछा था "अच्छा शासन किसे कहते हैं?" कनफ्यूशियस ने उत्तर दिया "अच्छे शासन की सफलता उस स्वाभाविक सम्बन्ध को कायम रखने में है, जो मनुष्य-मनुष्य के बीच होना चाहिए। शासक में राजोचित चरित्र, प्रजा में राजभक्ति, माता-पिता में वात्सल्य और बच्चों में श्रद्धा होनी चाहिए।"

उन दिनों उच्च वर्ग के लोगों के बड़े अपराधों पर भी उनको कोमल दण्ड होता था और गरीबों को कड़ा। कनफ्यूशियस ने इसका विरोध किया, और उस समय के एक कुख्यात दुश्चरित्र सरदार को उन्होंने प्राणदण्ड दिया। इस अपूर्व बात को लेकर राज्य में बड़ा क्षोभ हुआ और कनफ्यूशियस के मित्रों तथा शिष्यों तक को इस पर आपत्ति हुई। कनफ्यूशियस ने समझाया कि ऐसे विध्वंसक को दण्ड मिलना ही प्रजारक्षा के निमित्त ठीक है।

परन्तु परम्परावादी लोगों का उक्त बातों से समाधान न हुआ और उनका क्षोभ बढ़ता गया। इधर 'लू' राज्य की सुख-समृद्धि देखकर 'त्से' का राज्याधीश ईर्ष्या से दग्ध होता जा रहा था और 'लू' राज्य के उन्नायक मन्त्री कनफ्यूशियस को हरसम्भव नीचा दिखाने का प्रयत्न करके हार गया। 'त्से' के राजा ने 'लू' राज्य को गिराने के लिए एक नयी युक्ति सोची और उसने चुनी हुई प्रशिक्षित सुन्दरियों का एक दल उपहार-स्वरूप 'लू' प्रदेश के राजा के पास भेजा।

उन सुन्दरियों ने जाते ही अपना प्रभाव दिखाया और उनमें आसक्त होकर 'लू' का राजा महल से निकलना और राजकाज देखना ही छोड़ दिया। कनफ्यूशियस ने राजा को सजग करके उसे कर्तव्य पथ पर लाना चाहा, परन्तु न ला सके। अन्त में वे हारकर मन्त्री पद से त्याग-पत्र देकर चल दिये।

3. मन्त्री पद त्यागकर धर्म और नीति का प्रचार

कनफ्यूशियस के लिए एक लेखक ने लिखा है—“उससे अधिक यह कोई आदमी नहीं जान पाया कि कब पद ग्रहण करना चाहिए, कब तक उस पर स्थिर रहना चाहिए और कब उसे त्याग देना चाहिए।”

वर्षों कनफ्यूशियस इधर-उधर भटककर अपने जन्म स्थान पर लौट आये। उनके लौट आने के एक वर्ष के भीतर ही उनका पुत्र मर गया। उनका शरीर अब वृद्ध हो चला था, अतएव वे कमजोर हो गये थे। उनके दर्शन एवं धर्म का प्रचार यद्यपि जोर-तोर पर था, परन्तु वे उससे और अधिक प्रचार चाह रहे थे। इसलिए उन्हें अन्त में अपने उद्देश्य में असफलता प्रतीत होकर दुख का

अनुभव हो रहा था। कनफ्यूशियस ने अपना कोई अलग धर्म नहीं चलाया, परन्तु उनका शरीर न रहने पर 'कनफ्यूशियस धर्म' नाम का एक मत निकल ही पड़ा। आज के चीन में लगभग एक तिहाई इसी मत के वंशज हैं।

उस समय के कनफ्यूशियस का जीवन-काल एक दर्दभरी कहानी है। वे अपने कुछ शिष्यों के साथ एक राज्य से दूसरे राज्य में भटकते हुए, दुखित मानव को सन्मार्ग का उपदेश देते हुए और एक आदर्श धार्मिक राज्य की कल्पना करते हुए भ्रमण करते रहे। उस समय के वहां के कुछ विरक्त सन्त उन्हें पागल समझते और कहते—“जो कभी बदल नहीं सकता उस संसार की दुष्ट प्रकृति और क्रूर बुद्धि को बदलने का प्रयास व्यर्थ चेष्टा और मूर्खता नहीं तो क्या है?”

यद्यपि कनफ्यूशियस का आदर्श-राज्य कभी स्थापित न हो सका, तथापि उनकी सुन्दर शिक्षा का प्रभाव आगे आने वाली पीढ़ियों पर पड़ा। वस्तुतः ढाई हजार वर्षों से करोड़ों व्यक्तियों के हृदयों पर उनका शासन चला आ रहा है जो बाह्य क्षणिक शासन से कहीं महत्तम है। सिकन्दर, चंगेज खां तथा नेपोलियन तो केवल इतिहास के पन्नों में ही हैं। परन्तु कनफ्यूशियस जैसे महापुरुष आज भी करोड़ों व्यक्तियों के श्रद्धाभाजन हैं। आज भी उनका ज्ञान करोड़ों का अन्धकार दूर करता है।

4. महात्मा लाओत्जे से भेंट

कनफ्यूशियस के समय में एक अन्य प्रसिद्ध और वृद्ध महात्मा थे जिनका तत्कालीन चीन की जनता पर काफी प्रभाव पड़ा था। उनका नाम था 'लाओत्जे'। इनका जन्म कनफ्यूशियस की तरह सम्पन्न परिवार में नहीं हुआ था। वे एक गरीब परिवार में जन्म ग्रहण किये थे।

कनफ्यूशियस और लाओत्जे दोनों महापुरुषों के विचारों में बड़ा भेद था। कनफ्यूशियस जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र से अलग न जाकर उसे अधिक सुगठित तथा सुखप्रद बनाने की चेष्टा में थे और संसार को वे सुख-समृद्धि से भरापूरा देखना चाहते थे, और लाओत्जे संसार से उदासीन होकर विरक्तिपूर्वक एकांत जीवन के पक्ष में थे।

ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व 'सिज मा कियेन' नाम का एक चीनी इतिहासकार हुआ है। उसने लिखा है कि 517 ईसा पूर्व कनफ्यूशियस लाओत्जे से मिले थे। उस समय लाओत्जे अट्ठासी (88) वर्ष की अवस्था के थे और कनफ्यूशियस पैंतीस (35) वर्ष की अवस्था के।

संत लाओत्जे ने कनफ्यूशियस से कहा—“जिन महापुरुषों की बात तुम करते हो, वे मर चुके हैं, उनकी हड्डियां भी सड़ गयी हैं। केवल उनके शब्द

हैं। उनसे प्रेरणा लेकर स्वयं को सुधारो। विवेकवान मनुष्य अपनी रहनी ऊंची उठाता है और परिस्थिति अनुकूल न मिलने पर धैर्य से चलता है। समझदार धनी ऐसा रहता है मानो अकिंचन हो। सद्गुण संपन्न श्रेष्ठ मनुष्य साधारण जान पड़ता है। स्वयं के श्रेष्ठ होने का अहंकार और सारी इच्छाओं, मन की चालाकी और अनियंत्रित कामनाओं को त्यागकर ही कल्याण होगा। इन्हें रखकर किसी का हित नहीं हो सकता। तुम्हारे लिए मेरा इतना ही कहना है।”

कनफ्यूशियस ने लाओत्से से मिलने के बाद अपने शिष्यों में आकर कहा—“थलचर, जलचर तथा नभचर जानवर फंस सकते हैं, परंतु ‘ड्रैगन’ आकाश के ऊपर हिस्से में रहता है। वह कभी नहीं फंस सकता। आज मैंने लाओत्से नाम के वृद्ध दार्शनिक संत को देखा है। उनकी तुलना ‘ड्रैगन’ से ही हो सकती है। वह संत कहीं नहीं फंस सकता है।”

5. कनफ्यूशियस की महानता

उपर्युक्त विवरण से हम यह समझ सकते हैं कि कनफ्यूशियस एक उदार तथा चरित्रनिष्ठ पुरुष थे और अपने आप को वे एक साधारण मनुष्य मानते थे। उन्होंने अपने आप को कभी अलौकिक एवं पैगम्बर होने का दावा नहीं किया। पीछे उनके अनुयायियों ने मन्दिर बनाकर उनकी पूजा अवश्य शुरू कर दी।

कनफ्यूशियस का ढाई हजार वर्ष पूर्व घोषित किया हुआ यह प्रसिद्ध वाक्य है “दूसरों से तुम अपने प्रति जैसा बरताव की आशा करते हो, वैसा ही बरताव तुम स्वयं भी औरों के साथ करो।”

कनफ्यूशियस पुरानी मान्यताओं को बिलकुल मिटाकर अपने मत का भवन नहीं खड़ा करना चाहते थे। वे तो समाज के प्राचीन ढांचे को स्थायी रखते हुए उसको एक सुगठित रूप देना चाहते थे।

कनफ्यूशियस के बाद उनके मत के प्रचारक मेन्शियस नाम के तत्त्व-चिन्तक पुरुष हुए हैं जो 372-283 ई0 पूर्व हुए हैं। वे मानते थे कि मानव स्वभाव से शुद्ध है। वह गलत वातावरण में बिगड़ता है। अतः मनुष्य को अपनी जन्मजात शुद्धता को बनाये रखने के लिए अच्छा वातावरण तथा आत्मसंयम की बड़ी आवश्यकता है। आज विश्व में कनफ्यूशियस मत को मानने वाले लगभग 36, 50, 00, 000 (साढ़े छत्तीस करोड़) हैं।

1. ‘ड्रैगन’ चीन-देश का पौराणिक प्राणी है जो सर्पाकार है और उच्चतम आकाश में रहने वाला माना गया है।

महात्मा सुकरात

महात्मा सुकरात एक स्वतन्त्र प्रतिभा का नाम है जिसने सत में रहना और सत कहना जाना। उनके लिए जीवन और मृत्यु समान थे। उनके व्यक्तित्व ने यूनान में ज्ञानियों की एक शृंखला ही पैदा कर दी।

जन्म

ईसा से लगभग पांच सौ वर्ष पूर्व यूनान देश के 'एथेंस' नामक शहर में सुकरात नाम के महापुरुष हो गये हैं। वे पहले एक सैनिक थे। कवायद के समय एक बार वे गिर पड़े और चौबीस घंटे बेहोश रहे। उसके बाद जगने पर उनमें विचित्र चेतना जगी।

1. सत्य का प्रचार

वे जीवन, मृत्यु, सत्य, विवेक, अमरता आदि के विषय में जानना चाहते थे। विचित्र जिज्ञासु थे। पथों, बाजारों, हाटों, चौपालों में लोगों से सत्य के विषय में प्रश्न कर-करके उन्हें झकझोरते रहते थे।

उन्हें समसामयिक रूढ़ियों में काफी अन्धकार दिखाई दिया; अतः वे पंडितों, पुरोहितों, सामन्तों और महन्तों को ललकारने लगे। उन्हें अन्धविश्वासों से कट्टर विरोध था। वे सत्य कहने में कभी दबते नहीं थे।

सुकरात शरीर से कोई सुन्दर नहीं थे। छोटा कद, बड़ा-सा बेढंगा सिर, बड़ी-बड़ी भीतर धंसी आंखें, चौड़ी दबी हुई नाक; परन्तु व्यक्तित्व विशाल था। वे कपड़ा सादा, ढीला-ढाला पहनते, एक बेढंगी लकड़ी हाथ में रखते तथा कंधे पर मोटी-सी गुदड़ी।

वे विवाहित थे। उनके तीन बच्चे थे। उनकी पत्नी का नाम 'झेन्टीप' था। पत्नी कर्कशा थी। सुकरात धन की परवाह नहीं करते थे। इसलिए उनकी कोई अच्छी कमाई नहीं थी। इन सबके कारण पत्नी अधिक नाराज रहती थी।

जिस 'एथेंस' शहर में वे रह रहे थे, उसमें उनकी काफी ख्याति हो गयी थी। परन्तु धनवान और महंत लोग उनके दुश्मन बन गये थे; क्योंकि सुकरात उनकी गलतियों को क्षमा न करके उन पर करारी चोट करते थे। 'एथेंस' वासी युवकों से प्रश्न कर-करके उन्होंने एक हलचल मचा दी थी। निष्पक्ष लोग उनके तर्कों से प्रभावित होकर उनके भक्त हो जाते थे और गद्दार लोग जल जाते थे।

एक बार डेलफी के 'ओरेकल' (भविष्यवक्ता) ने सुकरात को उस समय का सर्वोच्च बुद्धिमान घोषित किया। यह सुनकर सुकरात जोर से हंसे और कहा कि मुझसे तो अधिक योग्य इसी शहर 'एथेंस' में ही कितने लोग हैं। "मैं यही जानता हूँ कि मैं बिलकुल बुद्धिमान नहीं हूँ।"

सुकरात सत्य के अन्वेषक थे। ईश्वर के विषय में तत्कालीन फैली धारणा के वे एकदम विरुद्ध थे। वे कहते थे कि परम सत्य को मैं केवल सत्य कह सकता हूँ। उसके विषय में तमाम बचकानी बातें करना बेकार है।

जब लोग सुकरात से पूछते—“पृथ्वी कैसे बनी? मनुष्य क्यों है? मृत्यु के बाद क्या होगा?” तब वे कहते—“इन बातों में उलझने से क्या काम? तुम हो, यह परम सत्य है। तुम अपने और पराये का कल्याण कैसे कर सकते हो, यह मुख्य प्रश्न है।”

वे सदाचारी, निर्भय और सत्यव्रती थे। वे सत्ताधारियों, पुरोहितों, महंतों तथा भ्रष्ट लोगों के तीव्र आलोचक थे। उनके आकर्षक तर्कों से मुग्ध होकर जनता एवं युवकों का दिल उन्हें हर समय घेरे रहता था। उनकी कठोर कसौटी में जो नहीं उतरता था उसे फटकारे बिना वे नहीं रहते थे।

धर्माधिकारी विलासी थे। वे सरल जनता से मोटी रकम लेकर उन्हें स्वर्ग का प्रमाण पत्र देते थे। धर्म अन्धविश्वासों से ढका था तथा राजनीति स्वार्थ से। इस बीच सुकरात भला चैन से कैसे रह सकते थे जो केवल सत्य के उपासक थे।

सत्ताधारी उनसे चिढ़ गये। उन्होंने सुकरात को बुलाकर कहा—“तुम युवकों से प्रश्न मत करो तथा किसी प्रकार का प्रचार न करो।” इस बात का इस्तिहार भी शहर में लगवा दिया गया और मुनादी भी हुई। परन्तु सुकरात ने सत्ताधारियों से कहा—“क्या मैं अपने विचारों को व्यक्त करने में भी परतन्त्र हूँ? क्या मैं उन मूर्ख और भ्रष्ट अधिकारियों के पीछे चलूंगा। यह असम्भव है।”

अधिकारियों ने सुकरात को पुनः सावधान किया कि यदि तुमने अपना प्रचार बन्द नहीं किया तो मौत के घाट उतार दिये जाओगे। परन्तु जो शरीर को अपना रूप नहीं समझता उसको मौत का क्या डर! वे अब भी युवकों को सत्य का खोजी होने की राय देते थे और कहते थे कि कभी किसी अन्धविश्वास में मत पड़ो। हर नागरिक का कर्तव्य है असत्य का भंडाफोड़ करना।

समसामयिक यूनान के दार्शनिक जो यह मानते थे कि हम संसार की रचना का मूलतत्त्व समझ लिये हैं; सुकरात ने अपने प्रबल तर्कों द्वारा उनकी पोलपट्टी खोलकर रख दी थी। वे अन्धभक्ति, अन्धपूजा तथा अन्धविश्वास के कट्टर विरोधी थे। अतः अहंकारी लोग जो समाज के द्वारा गलत ढंग से पुज रहे थे जल उठे और सुकरात की हत्या के विषय में योजनाएं बनाने लगे।

2. अपराध का आरोप

एक प्रातःकाल नगरवासियों ने देखा कि सत्ता की ओर से नगर में इस्तिहार चिपकाया गया है—“सुकरात पर नीचे लिखा अपराध लगाया जाता है—वह मान्य देवी-देवताओं के विरुद्ध प्रचार करता है तथा युवा वर्ग को बहकाता है—इसकी सजा केवल प्राणदण्ड है।”

सुकरात सत्तर वर्ष के हो चुके थे। उन्होंने इस्तिहार पढ़ा; परन्तु वे द्वन्द्वातीत थे। नगर का सज्जन समुदाय दुखी था। खलसमुदाय प्रसन्न था। परन्तु पूरे नगर में निश्चित केवल एक व्यक्ति थे, वह थे ‘सुकरात’। उन्हें अपने पर लगाये गये दोषों की सफाई देने की आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि उनका पूरा जीवन ही सफाई था।

सुकरात के अपराध का निर्णय करने के लिए बावन (52) नागरिकों की एक सभा बैठी। उसके बीच में सुकरात ने अपना गम्भीर भाषण दिया—“संसार को एक सिद्धान्त में बांधा नहीं जा सकता। हम इसकी एक झलक अपने अन्तर की गहराई में बैठ करके पा सकते हैं। मनुष्य का असली स्वरूप यह हाड़-मांस का ढांचा नहीं है। उसका सच्चा स्वरूप तो मैं के रूप में विद्यमान यह चेतन सत्ता है। हमें भौतिकता में न रमकर आध्यात्मिक सुख की अनुभूति करना चाहिए। हमें अपने आप को इन्द्रियों के भ्रम तथा शब्दों के जाल से मुक्त रखना चाहिए। हममें ईमानदारी तथा सत्य के लिए अविचल निष्ठा होनी चाहिए। भौतिक तथा नश्वर भोगों में फंसकर हमें अपने आत्म-सुख को नहीं खोना चाहिए। शरीर नाशवान है, आत्मा अजर-अमर है। आत्मा के सहारे ही देह चलती है। हमें वही वस्तुएं स्वीकार्य होनी चाहिए जिनसे हमारी आत्मा ऊपर उठे। भौतिक आकर्षणों के पीछे भटकता व्यक्ति व्यामोहित है। उसका विवेक सोया हुआ है। सही साधनों द्वारा सत्य का अन्वेषण ही मानव जीवन का लक्ष्य है। निष्पक्ष बनो। अपने को टटोलो कि हम सत्य पथ पर हैं कि नहीं! मैं सत्य का खोजी हूँ। मुझे अपने विषय में पूर्ण होने का दावा नहीं है।”

3. मृत्युदण्ड

सुकरात के उपर्युक्त वक्तव्य से राजनीतिज्ञों को संतोष नहीं हुआ। उन लोगों ने पूछा कि तुम्हें कौन-सा दण्ड मान्य होगा? सुकरात ने कहा—“एथेंस की जनता को मेरा उपकार मानना चाहिए; क्योंकि मैंने उन्हें अन्धविश्वासों से मुक्त होने का रास्ता दिखाया है।” इतना सुनकर अधिकारीगण अधिक जल गये, और सुकरात को जहर देकर मार डालने की आज्ञा दे दी गयी।

“कौन जानता है, मृत्यु और जीवन में कौन श्रेष्ठ है?”—यह कहकर सुकरात ने निश्चित भाव से आज्ञा सुन ली। उन्हें कारागार में ले जाया गया।

उनके भक्त भी उनके साथ गये, उन्हें घेरे रहे। सुकरात अपनी मस्ती में उस समय भी तत्त्व चर्चा में निमग्न थे।

सुकरात मृत्यु की महत्ता तथा आत्मा की अमरता पर भाषण दे रहे थे। उनके साथी उनके भाषण-श्रवण में तल्लीन थे। सुकरात कह रहे थे जीवन मुझे जितना प्रिय है, मृत्यु उतनी ही प्रिय है।

उनकी पत्नी 'झेन्टीप' आयी। वह सुकरात से सदा उलझी रही; परन्तु सुकरात के प्रति उसकी श्रद्धा कम नहीं थी। वह चिल्लाकर रो पड़ी। सुकरात ने उसे अपने शिष्यों द्वारा घर भेजवा दिया और सत्संग चर्चा में निमग्न हो गये।

उनके भक्तों ने उन्हें जेल से निकल भागने का प्रबन्ध कर दिया; सुकरात नहीं भागे। क्योंकि वे कोई अपराध नहीं किये थे।

वह घड़ी आ गयी। जेलर हलाहल विष (भयंकर जहर) का प्याला लेकर आया। सुकरात ने पूछा—“मुझे क्या करना चाहिए?” जेलर ने कहा—“इसे पी लें, और कुछ समय घूमते रहें। जब पैर लड़खड़ाने लगे तब लेट जायें।” जेलर विष का प्याला सुकरात को पकड़ते समय मुख पीछे कर लिया और उसकी आंखें आंसुओं से तर हो गयीं। परन्तु सुकरात प्रसन्न-मुख होकर विष को एक ही बार में पी गये।

विष पीकर सुकरात घूम रहे थे और शिष्यों को अपना अमृतोपदेश सुना रहे थे “मैं अमर हूँ। शरीर मरेगा, मैं नहीं मर सकता।” वे तत्त्वचर्चा कर रहे थे। अन्ततः उनके पैर लड़खड़ाने लगे। वे लेट गये। उन्होंने कहा—

“मैं इस संसार को छोड़ रहा हूँ, परन्तु जो कुछ मैंने यहां देखा, उससे अधिक कुछ नहीं हो सकता। मेरा समय आ गया है। मुझे छुट्टी मिल चुकी है। मैं आशापूर्ण हृदय से जा रहा हूँ। ऐ मेरी मृत्यु! तू मेरे जीवन की पूर्णता है। मैं तेरी प्रतीक्षा में हूँ। तुझसे मिलने के लिए मेरी आत्मा छटपटा रही है”

एक शिष्य ने पूछा—“आपकी समाधि का क्या होगा?” उन्होंने कहा—“जो तुम्हारी इच्छा हो, केवल यदि तुम मुझे रोक सको।” महात्मा सुकरात इस दुनिया से अनासक्त थे। उन्होंने आंखें मूंद लीं और मौन हो गये।

4. सुकरात की महानता

जहर देने वाले मर गये। आज उनको कोई नहीं जानता, परन्तु जहर पीकर सुकरात करोड़ों लोगों के हृदयों में जी गये और वे आज भी जीते हैं तथा जब तक मानवता का इतिहास जीवित रहेगा, सुकरात जीते रहेंगे। उनके आत्मा की उत्तम गति हुई ही।

सुकरात एक महान व्यक्तित्व के पुरुष थे। वे चाहते तो जेल से निकलकर भाग सकते थे। परन्तु वे जेल में ही डटे रहे। उनके लिए जीवन तथा मरण

बराबर थे। ऐसे महान पुरुष संसार में कभी-कभी आते हैं। सुकरात के जीवन-दर्शन और विचारों ने यूनान का बौद्धिक तथा नैतिक स्तर ऊंचा उठा दिया। यूनान के महान दार्शनिक 'प्लेटो' सुकरात के चरण शिष्य थे। प्लेटो के बाद सुकरात के दूसरे शिष्य 'जेनोफन' थे। इन्होंने सुकरात के विषय में महत्वपूर्ण विवरण लिखकर संसार को दिया है।

सुकरात ने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी। सुकरात के विषय में जो कुछ लिखा वह प्लेटो तथा जेनोफन ने। वस्तुतः सुकरात का सच्चा जीवन ही उनके विचारों को पढ़ने की पोथी है। सत्य की वेदी पर जो उन्होंने अपना बलिदान किया इससे वे संसार में और अधिक चमक गये।

5. महात्मा सुकरात के कुछ उपदेश

1. मनुष्य का सर्वोच्च धर्म है आत्मा का पूर्णत्व प्राप्त करना।
2. आत्मा को प्राप्त करो फिर सब कुछ मिल जायेगा।
3. ज्ञान ही धर्म है और अज्ञान अधर्म।
4. धर्म केवल बाह्याचरण नहीं, ज्ञानमूलक है।
5. धन से जीवन धार्मिक नहीं होता, प्रत्युत धर्म से धन प्राप्त हो जाता है।
6. अपने अज्ञान को जानना ज्ञान का प्रभाव है।
7. अन्धे के समान मत जीयो, जीवन पर विचार करो।
8. धार्मिक व्यक्ति कभी नीचे नहीं गिरता।
9. मृत्यु से न डरकर अधर्म से डरो।
10. किसी काम में मृत्यु की चिन्ता छोड़कर उचित-अनुचित की चिन्ता करो।
11. हमारा वैरी अन्य कोई नहीं, हमारे बुरे कर्म हैं।
12. मृत्यु से बचने की चेष्टा मत करो, बुरे कर्मों से बचो।
13. बुराई का बदला बुराई से लेने को कभी मत सोचो।
14. सुख-दुख की परवाह न करनेवाला मृत्यु को जीत लेता है।
15. अपने आत्मा को शरीर से भिन्न समझने का एकरस प्रयास ही मृत्यु का अभ्यास है।
16. आत्मा अमर है, उसका पुनर्जन्म होता है और जन्मान्तर में कर्मफल भोग चलते हैं।

महात्मा ईसा

संत ईसा विश्व-विश्रुत नाम है, जिसने विश्व को प्रेम का पाठ पढ़ाया। अहिंसा के इस अद्भुत पुजारी ने अपना बलिदान देकर विश्व के सामने सत्य में स्थिर रहने का उच्चतम आदर्श स्थापित किया और विश्व के एक बहुत बड़े जनसमुदाय को प्रभावित किया।

1. जन्म और जीवन

महात्मा ईसा नाजरथ नाम के गांव में मरियम नाम की कुंवारी कन्या के गर्भ से पैदा हुए थे। जब ईसा गर्भ में आ गये तब मरियम की शादी यूसुफ नाम के एक युवक से हुई जो पेशे से बढ़ई थे। ईसा बड़ा होकर अपने पिता के साथ बसुला-रंदा चलाकर बढ़ई का काम करते थे।

जिस गांव में ईसा पैदा हुए थे गरीबों का था। ईसा स्वयं भी गरीब घर में जन्में तथा पले थे। ईसा स्वभाव से कोमल और गरीबों से प्रेम करने वाले थे। ईसा के तीस वर्ष कैसे बीते इसका कोई पता नहीं है। वे तीस वर्ष की उम्र के बाद प्रसिद्ध होते हैं।

कुछ विद्वान यह कल्पना करते हैं कि इन तीस वर्षों के भीतर ही भारतवर्ष के तक्षशिला नाम के विश्वविद्यालय में उन्होंने शिक्षा ग्रहण की थी और उस समय भारत में फैले बौद्धमत से बहुत-सा उपदेश एवं ज्ञानतत्त्व ग्रहण किया था। इसीलिए ईसा के जीवन और उपदेशों में बौद्धमत के प्रतिबिंब हैं जैसे दया, अहिंसा, मानव-प्रेम, करुणा, समता, त्याग आदि। परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है कि ईसा तक्षशिला आये थे।

महात्मा ईसा यहूदी परिवार में जन्में थे। उस समय उसमें बहुत पाखंड भर गया था। इसलिए वे उससे ऊबे हुए थे। वे धनियों के आडम्बरपूर्ण जीवन, पुरोहितों के पाखंडों तथा राजनेताओं के अहंकार तथा दुराचरणों से घृणा करते थे। वे अपने आप को “मानव का पुत्र” कहते थे तथा आम जनता को अपने उपदेश देते हुए घूमते थे। वे कहते थे—“स्वर्ग का राज्य निकट है।” उनका यह कथन शायद जीवन की पवित्रता के लिए था। वे मानव-मात्र को पवित्र तथा सुखी देखना चाहते थे। इसलिए वे अधिकतम गरीबों में घूमकर उपदेश करते थे तथा कुलीनों द्वारा तुच्छ और अछूत कहे जाने वाले लोगों को श्रेय देते थे और उनके निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार करते थे।

2. यहुन्ना से भेंट

यहुन्ना भी यहूदी घर में जन्में तथा ईसा की तरह ही नवजवान थे। उनके विचार रोमन-साम्राज्य के विरोध में था। वे जौर्डन नाम की नदी के तट पर रहते थे और अपने श्रोताओं से कहते थे कि रोमन-राज्य शीघ्र नष्ट होगा तथा ईश्वर का राज्य स्थापित होगा।

यहुन्ना के उपदेशों के प्रभाव को सुनकर लोग दूर-दूर से उनके पास आते थे और यहुन्ना उन्हें जौर्डन नदी के जल से अभिषिक्त कर बपतिस्मा (दीक्षा) देते थे। ईसा की तरह यहुन्ना भी धनी पुजारियों, ऊंचे कुल के कहलाने वाले यहूदियों तथा राजपुरुषों के खिलाफ थे। जौर्डन नदी पर जहां यहुन्ना रहते थे जूडिया नामक जगह थी। ईसा ने यहुन्ना की महिमा सुनी और वे अपने कुछ शिष्यों के साथ यहुन्ना के दर्शन तथा सत्संग-लाभ के लिए उनके पास आये।

ईसा तथा यहुन्ना के विचारों में समता थी। ईसा यहुन्ना के पास कुछ दिनों तक रह गये और उनके उपदेशों से उन्होंने काफी लाभ उठाया। उन्होंने यहुन्ना से बपतिस्मा (दीक्षा) भी ग्रहण की। पीछे ईसा भी बपतिस्मा देने लगे। इस प्रकार जौर्डन नदी के दोनों तटों पर बपतिस्मा देने की काफी गहमागहमी हो गयी।

यहुन्ना राज्याधिकारियों की बड़ी आलोचना करते थे। अतएव वे पकड़कर कारावास में डाल दिये गये।

3. ईसा की चालीस दिन की तपस्या

यहुन्ना के कैद हो जाने पर ईसा मृत्यु-सागर तथा जौर्डन नदी के क्षेत्र में घूम-घूमकर अपना उपदेश देते रहे। जूडिया के रेगिस्तान में उन्होंने उपवास तथा तप किया। लोगों में भ्रम था कि इस रेगिस्तान में भूत-प्रेतादि रहते हैं। जनता ने ईसा की बड़ी महिमा फैलाई कि ईसा ने इस रेगिस्तान के शैतानों से घोर संग्राम करके विजय पायी है।

इसके बाद ईसा गैलिली लौट आये। यहुन्ना के सत्संग तथा रेगिस्तान में चालीस दिन तप तथा चिंतन के परिणाम में ईसा का व्यक्तित्व उद्घाटित हो गया। ईसा ने यहुन्ना का सत्संग पाकर निर्भय होकर उपदेश करना सीखा। ईसा में क्रांति की भावना अधिक जग गयी। यहुन्ना की तरह ईसा ने भी “स्वर्ग का राज्य निकट है।” कहना शुरू किया।

4. संत ईसा के उपदेश

उन्होंने कहा “संसार में पाप का राज्य है। शैतान राजा है। उसी की आज्ञा में सब चल रहे हैं। राजा ज्ञानियों की हत्या करता है। भले लोगों को विवशता से दुख में पिसने के सिवा कोई चारा नहीं है। इसलिए यह समाज तथा संसार ईश्वर के भक्तों का शत्रु है। पाप का घड़ा भर गया है और वह फूटने वाला

है। इसके बाद ईश्वर का राज्य आयेगा। अभी तो अच्छे-बुरे सब प्रकार के लोग हैं। परन्तु ईश्वर का राज्य होने पर वह एक बड़ा जाल बिछायेगा। उसमें अच्छी-बुरी सारी मछलियां फंस जायेंगी। उसमें अच्छी लेकर बुरी को फेंक दिया जायेगा। पहले धीरे से बदलाव होगा। पीछे व्यापक हो जायेगा। यह बदलाव आटे में खमीर की तरह होगा, इत्यादि।” इस प्रकार ईसा ने अपना उपदेश देना आरम्भ किया।

इस स्वर्गीय राज्य को स्थापित करने की जिम्मेदारी संत ईसा ने अपने ऊपर ली। यह समाज का बुरे से अच्छी दिशा में बदलाव था। उन्होंने राजनीति को अपने उपदेश तथा जीवनचर्या से दूर रखा। उन्होंने रोमन-साम्राज्य का तख्ता पलटने की बात नहीं सोची, किंतु अपना निर्विघ्न कार्य करने के लिए राज्य को कर (टैक्स) दिया।

उन्होंने संसार के भोगों को तुच्छ समझा। वे जीवनभर अविवाहित रहे। उन्होंने क्षणभंगुर दुनियादारी सुखों में जीवन नष्ट करना अनुचित समझा। गैलिली के भक्तों ने महात्मा ईसा को राजा बनाने का प्रस्ताव रखा। परन्तु यह बात सुनकर संत ईसा जंगल को भाग गये। यह उनका विवेक था। ईसा को राज्य की भूख न थी। वे तो मानवता के उन्नायक थे। उन्होंने यह दिखा दिया कि नागरिकता एवं राष्ट्रीयता से मानवता ऊंची है।

जब उन्होंने कहा “स्वर्ग का राज्य निकट है”, तब उनके मन में यही था कि सत्य की विजय होती है। वैसे वे लौकिक राज्य को बुरा मानते थे। वे न्यायाधीश को आततायी समझते थे। जनता को उससे लड़ने के लिए उभाड़ते थे। उनका रास्ता हिंसा का नहीं था, किन्तु सत्य-अहिंसा का था। वे कहते थे कि विद्वान, पुरोहित तथा धनी ईश्वर के स्वर्गीय राज्य में प्रवेश नहीं पा सकते। उसमें तो साधारण लोग, निर्धन, स्त्रियों, विनयशील, बच्चे आदि निष्पाप लोग ही प्रवेश पायेंगे। वे जानते थे कि मेरे इस उपदेश से आभिजात्य तथा अधिकारी लोग मेरी जान के ग्राहक हो जायेंगे। परन्तु वे इससे निर्भय थे। उन्होंने सोचा गरीब, उपेक्षित तथा विनम्र लोग मेरी बातें सुनेंगे। वे ऊंच-नीच की भावना मिटाकर मानवमात्र में समता की स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने कहा— जिसने अपने आत्मा को खो दिया, अर्थात् अपना महत्त्व मिटा दिया, वह सारी दुनिया को भी पा गया, तो क्या हुआ।

संत ईसा ने ईश्वर को पिता कहा। अथवा उन्होंने अपने आप को ईश्वर का पुत्र कहा। इसे भारतीय भाषा में “अमृतस्य पुत्रा” अर्थात् जीव को अमृत का पुत्र कहा गया है। इसका सरल अर्थ यही होगा कि जीव परम सत्य है। मनुष्य सत्य है, वह सत्य से प्रेम करे। संत ईसा ने कहा कि तुम दूसरों को केवल प्रेम दो, उनसे कुछ अपने लिए न चाहो। त्यागमय जीवन बनाओ। जब तुम्हारे ऊपर

मुकदमा चले तब तुम अपनी रक्षा के लिए कोई प्रमाण मत दो, इजरायल के नगरों में घूमो और मानव के सच्चे पुत्र बनो। यह निश्चय है कि इस तरह चलोगे तो मंदिरों में मारे जाओगे, जेलों में डाले जाओगे। भय छोड़ दो। तुम्हारी आत्मा अमर है। सत्य कहने में डर मत करो। सत्य के लिए माता, पिता, भाई, पत्नी, बच्चे सब छोड़ दो। जो ऐसा नहीं कर सकता वह मेरा शिष्य नहीं हो सकता। जो व्यक्ति अपने माता, पिता, पत्नी, बच्चे, भाई, बन्धु से मुझसे अधिक प्रेम करता है वह मेरा शिष्य नहीं हो सकता। हे लोगो! तुम बोझ से पीड़ित हो। मेरे पास आओ! मैं तुम्हें आराम दूंगा। मुझमें विश्वास करो, क्योंकि मैं विनम्र हूँ।

अंतीपस नामक सरदार ने ही यहून्ना को जेल में डाला था। उसके विरोध में ईसा ने भी बहुत कुछ कहा। हवा यह फैली कि अंतीपस ईसा को मार डालना चाहता है, परन्तु ईसा ने इसकी कोई चिंता नहीं की।

ईसा की अपनी जन्मभूमि नाजरथ में उनकी बात कोई नहीं सुनना चाहता था। इसको लेकर ईसा को निराशा हुई। उन्होंने कहा—लोमड़ियों के लिए जमीन में बिल है तथा पक्षियों के लिए घोंसलें, परन्तु मानव-पुत्र के लिए सिर छुपाने के लिए भी जगह नहीं है।

यहूदी, जिसमें ईसा जन्में थे, ईसा के लिए कटु होते गये। यहूदियों का एक “फैरिसी” सम्प्रदाय था। वह बहुत ढोंगी था। उनमें बड़ा आडम्बर था। उनके अनेक आचरण उपहास-जनक थे। जो उनको आदर देते थे वे भी उनके आचरण से हंसे बिना नहीं रहते थे। “फैरिसी” में निम्न आचरण थे—

1. तिक्फी—ये रास्ते में चलते समय पैर घसीटते तथा पत्थरों पर ठोकर मारते हुए चलते थे।
2. किजाई—ये इसलिए आंखें बन्द करके चलते थे कि जिससे स्त्री पर नजर न पड़ जाय। ये दीवारों से अपने सिर इस तरह टकराते थे कि इनके मस्तक रक्तरंजित हो जाते थे।
3. मदिन्किया—ये कमर दोहरी करके चलते थे।
4. शिकमी—ये पीठ झुकाकर चलते थे कि मानो हजरत मूसा के सारे आदेश तथा नियम इन्हीं की पीठ पर लदे हैं।
5. रंगे सियार—अनेक पाखंड तथा बाह्याचार करने वाले।

शायद ये नाम उनको जनता ने दे रखे थे। संत ईसा को इस फैरिसी सम्प्रदाय से बड़ी चिढ़ थी। फैरिसी लोग अपने को संप्रान्त, उच्च तथा धार्मिक मानते थे। ईसा गरीबों तथा सरल लोगों को उपदेश देते थे। इसलिए फैरिसी लोग इससे अपना अपमान समझते थे। इससे संत ईसा से फैरिसी लोग घृणा बढ़ाते गये।

एक बार यहूदियों के मंदिर में पशुबलि के लिए पशुओं की खरीद-बिक्री की ईसा ने बड़ी निंदा की, पुरोहितों को बहुत फटकारा और व्यापारियों को मंदिर से बाहर निकाल दिया। ईसा तथा उनके शिष्य निर्भय होकर यहूदियों के सम्प्रदाय में घुसे हुए पाखंड तथा अत्याचार को विनष्ट कर देना चाहते थे।

एक बार संत ईसा ने कहा—“मैंने दो मनुष्यों को पूजा हेतु मन्दिर में जाते हुए देखा। उनमें से एक फैरिसी था, दूसरा अछूत। फैरिसी ने इस प्रकार प्रार्थना करना आरम्भ किया “हे ईश्वर, मैं तुझे धन्यवाद देता हूँ कि मैं औरों की तरह रुपया ऐंठने वाला अन्यायी या व्यभिचारी नहीं हूँ और न मैं इस अछूत-सा ही हूँ। मैं सप्ताह में दो बार उपवास करता हूँ और अपने धन का दसवाँ हिस्सा दान कर देता हूँ।” और अछूत ने दूर खड़े होकर बिना आसमान की ओर आंख उठाये, छाती पीटते हुए कहा—“हे ईश्वर, मुझ पापी पर दया कर।” ईसा ने कहा—“मैं कहता हूँ कि अछूत फैरिसी की अपेक्षा अधिक अच्छा था।”¹

संत ईसा यहूदी परिवार में पैदा अवश्य हुए थे, परन्तु उनके विचार उससे स्वतन्त्र थे। ईसा के व्यंग्य भरे वचनों से यहूदी उनके शत्रु बन गये और उनकी जान के भूखे हो गये।

5. गैलिली से जूड़िया प्रस्थान

कहा जाता है कि यदि ईसा जीवनभर गैलिली में ही रहते तो उनके ऊपर कोई आंच न आती, परन्तु उन्होंने सोचा कि अपनी बातें दूसरी जगहों में भी फैलाऊँ। एक उत्सव में लोग गैलिली से जूड़िया गये, तो ईसा भी बिना किसी से कुछ कहे-सुने अकेला वहाँ के लिए चल दिये।

जूड़िया पहुंचने पर ईसा के शिष्य उनसे मिले, परन्तु उन्होंने अपने शिष्यों में बड़ा बदलाव पाया। वे सब अपरिचित से लग रहे थे। जनता ईसा की बातों को नहीं सुन रही थी। गैलिली-निवासी होने के कारण भी जूड़िया में उनका निरादर हो रहा था।

एक दिन वे वहाँ के मन्दिर में गये। उनके शिष्यों ने उनकी दृष्टि मन्दिर के ऐश्वर्य पर आकृष्ट किया। ईसा ने कहा “तुम इन इमारतों की ओर देखते हो! इनकी एक-एक ईंट का भी पता नहीं रहेगा। देखना चाहते हो तो इस गरीब विधवा की ओर देखो। इसने दान-संदूकचे में जो पाई डाली है वही उसका सर्वस्व था। धनियों के दान से इसके दान का अधिक महत्त्व है।” ऐसी बात मन्दिर के पुरोहितों को बहुत बुरी लगी।²

1. हिन्दी विश्वभारती, पृष्ठ 798।

2. हिन्दी विश्वभारती, पृष्ठ 798।

यरूशलम में ईसा ने अपने लिए कटुता का अनुभव किया। इसलिए वे वहां से डेढ़ घंटे चलकर बैथनी नाम की जगह में चले जाते थे। वहां एक अच्छा परिवार था। यहां मार्था और मैरी नाम की दो बहनें तथा लैजेरस नाम का भाई रहते थे। इनके यहां ईसा को शांति मिलती थी।

ईसा के उपदेशों से यहूदी एकदम भड़क गये थे। वे अधिकारियों को उनके विरोध में भड़काने के लिए तत्पर हो गये थे।

एक दिन आवेश में आकर ईसा ने कह ही डाला—“हाथों से बनाये इस मन्दिर को मैं नष्ट कर दूंगा और बिना हाथों के तीन दिन के अन्दर दूसरा मन्दिर बना दूंगा।” इसका अर्थ लोगों ने बहुत लगाया पर समझ न सके। बाद में ईसा का यही कथन उस अपराध-पत्र पर उद्धृत किया गया था, जिसे सुनाकर अन्त में उन्हें क्रूस पर लटकाया गया।¹

संत ईसा की उक्त बात से पुरोहित-वर्ग चिढ़ गया। यहूदी एवं फैरिसियों ने ईसा पर पत्थर फेंके, क्योंकि पैगम्बर मूसा के आदेश हैं—“यदि कोई तुम्हें प्राचीन पंथ से विचलित करे, तो उसकी सुने बगैर उसे पत्थर मारो।”² लोगों ने ईसा को पागल करार दे दिया।

संत ईसा ठंडी के चार महीने यरूशलम में रहे। इसके बाद वे जौर्डन नदी तट पर गये। इस बीच एक घटना घटी। जाकियस नाम का एक अपराधी था। ईसा ने उसका आतिथ्य स्वीकार किया। इससे प्रभावित होकर वह ईसा का शिष्य बन गया और अपना आधा धन गरीबों तथा अपंगों में बांट दिया। उसने पहले जिनके धन अन्यायपूर्वक लिए थे, उन्हें उसका चौगुना लौटा दिया। इसी समय कहा जाता है कि ईसा ने एक मृत व्यक्ति को जिला दिया। परन्तु यह पीछे का उनके शिष्यों द्वारा प्रचार लगता है, क्योंकि मृत को कोई जिला नहीं सकता।

यहूदियों ने तय किया कि ईसा हमारे सम्प्रदाय के लिए खतरनाक है। अतएव सम्प्रदाय की रक्षा के लिए एक व्यक्ति की हत्या करवा देना अच्छा है। पुरोहित समझ रहे थे कि ईसा के प्रचार से मन्दिर की आमदनी घटेगी। अतएव यरूशलम के मन्दिर का प्रधान पुरोहित “काइआफा” ने ईसा को कैद कर लेने की आज्ञा दे दी।

यरूशलम में अगले दिनों एक उत्सव था। लोग सोचते थे कि ईसा उसमें आयेंगे तब उन्हें कैद कर लिया जायेगा। ईसा उत्सव के छह दिन पहले बैथनी गये। उनकी शिष्या मैरी ने एक इत्रदान फोड़कर सारा इत्र ईसा के पैरों पर

1. वही, पृष्ठ 798।

2. वही, पृष्ठ 798।

उड़ेल दिया और अपने सिर के बालों से उनके पैर पोछे। घर सुगन्धी से भर गया। परन्तु ईसा के एक शिष्य जूडास को यह व्यर्थ का खर्च अच्छा न लगा।

दूसरे दिन ईसा बैथनी से यरूशलम गये। गैलिली के लोगों ने ईसा के विचारों की विजय के उपलक्ष्य में एक जुलूस निकाला। एक गधे को सजाकर ईसा को उस पर बैठाया गया और सड़क पर जुलूस लेकर चले। लोगों ने रास्ते में कपड़े बिछाये। भीड़ में से अनेकों ने ईसा को यहूदियों का राजा कहकर नारा लगाया। इसे संभ्रात तथा कुलीन यहूदियों ने बुरा माना और उन्होंने ईसा से कहा कि ऐसा नारा लगाने से अपने अनुयायियों को रोक दो। ईसा ने कहा यदि ये चुप हो जायेंगे तो सड़क की एक-एक ईंट बोल पड़ेगी। इस उत्सव के बाद संत ईसा पुनः बैथनी चले गये।

इसके बाद यहूदी बहुत उत्तेजित हो गये। प्रधान पुरोहित “काइआफा” के घर पर बैठक हुई, और निर्णय लिया गया कि बिना प्रचार किये, चुपचाप ईसा को कैद कर लिया जाये। ईसा का एक शिष्य जूडास पुरोहितों के हाथों फूट गया। वह थोड़े पैसे के प्रलोभन में पड़ गया।

ईसा ने अपने सभी शिष्यों के साथ भोजन करते समय उनकी तरफ इशारा करके कहा कि इनमें एक मुझे धोखा देगा। जूडास का रवैया पहले से भी अच्छा नहीं था। वह चौंक गया और कहा—क्या प्रभु, आपका सन्देह मेरे ऊपर है!

जूडास ने ईसा को पकड़ने वालों से कह रखा था कि मैं जिसका हाथ चूम लूंगा उसको समझ लेना कि ईसा है। जूडास जानता था कि ईसा अपने शिष्यों के साथ कहां प्रार्थना करते हैं। जब यहूदियों को लेकर जूडास ईसा के पास पहुंचा तब ईसा के अन्य सारे शिष्य भी ईसा को छोड़कर भाग खड़े हुए और बिना कठिनाई के ही ईसा बन्दी बना लिये गये।

ईसा को यहूदी रोमन न्यायाधीश पाइलेट के पास ले गये। न्यायाधीश नहीं चाहता था कि ईसा को मृत्युदण्ड दिया जाये, परन्तु यहूदियों तथा उनके पुरोहितों के जोर देने पर उसने संत ईसा को क्रूस पर चढ़ाने की आज्ञा दी।

ईसा की हत्या करने वाला यहूदी-समाज संसार में नाना ठोकर खाया और थोड़ा रह गया, परन्तु ईसा की परम्परा विश्वव्यापी हो गयी। सचमुच सत्य की हत्या नहीं की जा सकती। ईसा एक निर्मल संत थे। समसामयिक यहूदियों ने उन्हें नहीं समझा।